॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ अथर्ववेद संहिता ॥

॥ अथर्ववेद॥

॥ अथ एकादश काण्डम्॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १-ब्रह्मौदन सूक्त 4
सूक्त २- रुद्र सूक्त 21
सूक्त ३- ओदन सूक्त 33
सूक्त ४- प्राण सूक्त 59
सूक्त ५ – ब्रह्मचर्य सूक्त 69
सूक्त ६- पापमोचन सूक्त 81
सूक्त ७- उच्छिष्ट-ब्रह्म-सूक्त 89
सूक्त ८ – अध्यात्म सूक्त 99
सूक्त ९ – शत्रुनिवारण सूक्त 111
सूक्त १० – शत्रुनाशक सूक्त 121

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त १-ब्रह्मौदन सूक्त

अग्नि देव की स्तुति, ब्रह्मौदनासव यज्ञ और सोमरूपी ब्रह्मौदन

अग्ने जायस्वादितिर्नाथितेयं ब्रह्मौदनं पचति पुत्रकामा ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वा मन्थन्तु प्रजया सहेह ॥११,१.१॥

हे अग्निदेव ! आप प्रकट हों । यह अदिति (देवमाता) सुसन्तति की कामना करती हुई ब्रह्मौदन(हविष्यान्न) पकाती हैं । अतीन्द्रिय शक्ति सम्पन्न सप्तर्षि जो प्राणियों को उत्पन्न करने वाले हैं, वे आप (अग्निदेव) को इस देवयजन कार्य में प्रजा (याजकों) के साथ मंथन क्रिया द्वारा उत्पन्न करें ॥११,१.१॥

कृणुत धूमं वृषणः सखायोऽद्रोघाविता वाचमछ ।
अयमग्निः पृतनाषाट्सुवीरो येन देवा असहन्त दस्यून् ॥११,१.२॥

हे सामर्थ्य सम्पन्न मित्रो (ऋत्विजो) ! आप मंथन द्वारा अग्नि को उत्पन्न करें । ये अग्निदेव द्रोहरहित साधकों के संरक्षक

हैं, शत्रुओं (कुसंस्कारों) की सेना को पराजित करने वाले उत्तम वीर हैं, जिनके द्वारा देवों ने दस्युओं को वशीभूत किया ॥११,१.२॥

अग्नेऽजनिष्ठा महते वीर्याय ब्रह्मौदनाय पक्तवे जातवेदः ।
सप्तऋषयो भूतकृतस्ते त्वाजीजनन्न् अस्यै रयिं सर्ववीरं नि यछ ॥११,१.३॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! आप महान् पराक्रम के लिए उत्पन्न होते हैं। ज्ञानवर्धक अन्न (ब्रह्मौदन) पकाने के लिए, प्राणियों के उत्पादक सप्तर्षियों में आपको प्रकट किया है, अत: इस माता को वीर भावों से सम्पन्न सुसन्तति प्रदान करें ॥११,१.३॥

समिद्धो अग्ने समिधा समिध्यस्व विद्वान् देवान् यज्ञियामेह वक्षः ।
तेभ्यो हविः श्रपयं जातवेद उत्तमं नाकमधि रोहयेमम् ॥११,१.४॥

हे अग्निदेव ! समिधाओं में प्रदीप्त होकर आप यज्ञीय देवों को लेकर यहाँ पधारें । हे ज्ञान सम्पन्न अग्ने ! आप देवताओं के लिए हविष्यान्न पकाते हुए देहावसान के अनन्तर इसे (यजमान को) श्रेष्ठ स्वर्ग में प्रतिष्ठित करें ॥११,१.४॥

त्रेधा भागो निहितो यः पुरा वो देवानां पितॄणां मर्त्यानाम् ।
अंशां जानीध्वं वि भजामि तान् वो यो देवानां स इमां पारयाति ॥११,१.५॥

जो देवताओं, पितरगणों और मनुष्यों के तीन प्रकार के भाग पहले से स्थापित करके रखे गये हैं. हम उन्हें विभाजित करके समर्पित करते हैं । आप अपने-अपने अंश के अभिप्राय को जानें, इनमें जो देवों का अंश है, वही अग्नि में आहुति रूप में समर्पित होकर, इस यजमान पत्नी (देवमाता अदिति) को पार करें, (इष्ट – लक्ष्य तक पहुँचाएँ) ॥११,१.५॥

अग्ने सहस्वान् अभिभूरभीदसि नीचो न्युब्ज द्विषतः सपत्नान् ।
इयं मात्रा मीयमाना मिता च सजातांस्ते बलिहृतः कृणोतु ॥११,१.६॥

हे अग्निदेव ! आप बलशाली और शत्रुओं के पराभूतकर्ता हैं । अतः विद्वेषीं शत्रुओं को अध:पतित करें । है यजमान ! यह परिमित परिमाण में मापी हुई शाला (यज्ञशाला) आपके सजातीय वीरों को आपके लिए द्रव्य भेंट करने वाला बनाए॥११,१.६॥

साकं सजातैः पयसा सहैध्युदुब्जैनां महते वीर्याय ।
ऊर्ध्वो नाकस्याधि रोह विष्टपं स्वर्गो लोक इति यं वदन्ति
॥११,१.७॥

हे याजक ! आप साथ जन्मे हुए साथियों के साथ वृद्धि को प्राप्त हों, उच्च पराक्रमी कार्य के लिए इसे तैयार करें । उस लोक में आरोहण करें, जिसे स्वर्गलोक कहा गया हैं ॥११,१.७॥

इयं मही प्रति गृह्णातु चर्म पृथिवी देवी सुमनस्यमाना ।
अथ गछेम सुकृतस्य लोकम् ॥११,१.८॥

यह विस्तृत देवी स्वरूपा पृथ्वी शुभसंकल्पों से युक्त होकर, चर्मरूपी ढाल अपने संरक्षण के लिए धारण करे। जिससे हम पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥११,१.८॥

एतौ ग्रावाणौ सयुजा युङ्धि चर्मणि निर्बिन्ध्यंशून् यजमानाय साधु ।
अवघ्नती नि जहि य इमां पृतन्यव ऊर्ध्वं प्रजामुद्धरन्त्युद्वह
॥११,१.९॥

हे ऋत्विक् ! इन साथ-साथ रहने वाले दोनों ग्रावाओं (सोम निष्पादक उपकरण) को पृथ्वी की त्वचा पर रखें। यज्ञमान के निमित्त सोमरस को कूटकर निकालें । जो इस स्त्री (अदिति) पर आक्रमण करते हैं, उन्हें विनष्ट करें । (हे अदिति !) सोमरस निचोड़ती हुई और भरण-पोषण करती हुई आप अपने प्रजाजनों को श्रेष्ठ पद पर स्थापित करें ॥११,१.९॥

गृहाण ग्रावाणौ सकृतौ वीर हस्त आ ते देवा यज्ञिया यज्ञमगुः ।
त्रयो वरा यतमांस्त्वं वृणीषे तास्ते समृद्धीरिह राधयामि ॥११,१.१०॥

हे वीर ऋत्विक् ! आप अपने हाथों में ग्रावाओं को धारण करें। पूजनीय देवता आपके यज्ञ में पधारें । हे यजमान ! आप जिन तीनों वरों की याचना करना चाहते हैं, उन्हें मैं यज्ञ द्वारा सिद्ध (पूर्ण) करता हूँ ॥११,१.१० ॥

इयं ते धीतिरिदमु ते जनित्रं गृह्णातु त्वामदितिः शूरपुत्रा ।
परा पुनीहि य इमां पृतन्यवोऽस्यै रयिं सर्ववीरं नि यच्छ ॥११,१.११॥

हे अग्निदेव ! यह आपकी धारण शक्ति हैं और यह जन्म की प्रक्रिया है । शूरों की माता अदिति आपको ग्रहण करें । वीरों की सेना वाली इस देवी को जो कष्ट दें, उन्हें दूर हटा दें और इसे वीरों से समृद्ध करें ॥११,१.११॥

उपश्वसे द्रुवये सीदता यूयं वि विच्यध्वं यज्ञियासस्तुषैः ।
श्रिया समानान् अति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि ॥११,१.१२॥

हे यज्ञकामिन् (याजको या अन्नकणों) ! आप जीवन यात्रा के लिए स्थित हों । तुषों (विकारों) को अलग करें तथा समान प्रकार के अन्यों में श्रेष्ठ बने । विद्वेषियों को हम पद दलित करें ॥११,१.१२॥

परेहि नारि पुनरेहि क्षिप्रमपां त्वा गोष्ठो अध्यरुक्षद्भराय ।
तासां गृह्णीताद्यतमा यज्ञिया असन् विभाज्य धीरीतरा जहीतात्॥११,१.१३॥

हे नारी !(नेतृत्व क्षमता सम्पन्न स्त्री या मंत्रशक्ति) आप दूर जाकर शीघ लौटें। आपको गोष्ठों (गौ या किरणों) के स्थान पर जल की आपूर्ति के लिए पहुँचाया जा रहा है । यहाँ से यज्ञीय जल- अंशों को ग्रहण करें तथा बुद्धिपूर्वक शेष (अनुपयोगी) जल अंशों को छोड़ दें ॥११,१.१३॥

एमा अगुर्योषितः शुम्भमाना उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व ।
सुपत्नी पत्या प्रजया प्रजावत्या त्वागन् यज्ञः प्रति कुम्भं गृभाय
॥११,१.१४॥

ये देवियाँ सुसज्जित होकर आ गयी हैं । आप उठे और पराक्रम प्रारंभ करें । स्वामियों में श्रेष्ठ स्वामी वाली तथा संतानों में श्रेष्ठ संतान वाली (हे स्त्री !) तुम्हें यज्ञ की प्राप्ति हुई है । इस कुम्भ (पूरित करने वाले पात्र) को स्वीकार करें ॥११,१.१४॥

ऊर्जो भागो निहितो यः पुरा व ऋषिप्रशिष्टाप आ भरैताः ।
अयं यज्ञो गातुविन् नाथवित्प्रजाविदुग्रः पशुविद्वीरविद्वो अस्तु
॥११,१.१५॥

हे जलदेवो ! आपके शक्तिप्रद भाग पहले से निश्चित किये गये हैं, ऋषियों के निर्देश से उन्हें हीं भरकर यहाँ लाएँ। आपके निमित्त सम्पन्न होने वाला यह यज्ञ पथप्रदर्शक, ऐश्वर्यवर्धक, सुप्रजाप्रदायक, पराक्रमवर्धक गौ, आदि पशु प्रदान करने वाला तथा वीर सन्ततियों को प्रदान करने वाला हो ॥११,१.१५॥

अग्ने चरुर्यज्ञियस्त्वाध्यरुक्षच्छुचिस्तपिष्ठस्तपसा तपैनम् ।

आर्षेया दैवा अभिसंगत्य भागमिमं तपिष्ठा ऋतुभिस्तपन्तु ॥११,१.१६॥

हे अग्ने ! यज्ञ के लिए उपयुक्त, पवित्र और तप: सामर्थ्य से सम्पन्न अन्न (चरु) उपलब्ध हुआ है, अतएव आप इसे अपनी ऊष्मा से प्राप्त करें । ऋषि और देवगण भी इसे पाएँ और ऋतुओं के अनुकूल बनाएँ॥११,१.१६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा आपश्चरुमव सर्पन्तु शुभ्राः ।
अदुः प्रजां बहुलां पशून् नः पक्तौदनस्य सुकृतामेतु लोकम् ॥११,१.१७॥

पवित्र किये गये, शुद्ध और मिश्रित करने वाले यज्ञ के योग्य यह शुभ्र वर्णयुक्त जल, चरुस्थाली में प्रवेश करे । यह जल हमें सुसन्तति और श्रेष्ठ पशु प्रदान करे । ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान पुण्यलोक को प्राप्त करें ॥११,१.१७॥

ब्रह्मणा शुद्धा उत पूता घृतेन सोमस्यांशवस्तण्डुला यज्ञिया इमे ।
अपः प्र विशत प्रति गृह्णातु वश्चरुरिमं पक्त्वा सुकृतामेत लोकम् ॥११,१.१८॥

मंत्र से पवित्र और घृतादि से पके हुए दोषरहित ये चावल सोम के अंश स्वरूप हैं। अतएव हे यज्ञीय तण्डुलो ! तुम चरुस्थाली में स्थित जल में प्रवेश करो। ब्रह्मौदन (ज्ञान सम्पन्न पोषक प्रवाह) के पाचक (पकाने वाले) यजमान स्वर्गलोक को प्राप्त करें ॥११,१.१८॥

उरुः प्रथस्व महता महिम्ना सहस्रपृष्ठः सुकृतस्य लोके ।
पितामहाः पितरः प्रजोपजाहं पक्ता पञ्चदशस्ते अस्मि ॥११,१.१९॥

(हे ब्रह्मौदन !) आप बढ़े और महत्ता प्राप्त करके फैल जाएँ । हे सहस्रपृष्ठ (हजारों आधार वाले) !आप पुण्यलोकों में प्रविष्ट हों । पितामह, पिता, संतानों, उनकी संतानों के क्रम में आपको पकाने वाला मैं पन्द्रहवाँ हूँ ॥११,१.१९॥

सहस्रपृष्ठः शतधारो अक्षितो ब्रह्मौदनो देवयानः स्वर्गः ।
अमूंस्त आ दधामि प्रजया रेषयैनान् बलिहाराय मृडतान् मह्यमेव ॥११,१.२०॥

हे यजमान ! यह सहस्रपृष्ठ और सैकड़ों धाराओं वाला ब्रह्मौदन देवयान मार्ग से स्वर्ग प्रदायक है । इसे मैं आपके

लिए धारण करता हूँ। इन्हें संतान के साथ संयुक्त कर देने के लिए प्रेरित करें और हमें सुखी करें ॥११,१.२०॥

उदेहि वेदिं प्रजया वर्धयैनां नुदस्व रक्षः प्रतरं धेह्येनाम् ।
श्रिया समानान् अति सर्वान्त्स्यामाधस्पदं द्विषतस्पादयामि
॥११,१.२१॥

(यज्ञदेव) वेदिका के ऊपर उदय हों, इसे (ब्रह्मौदन) ऊर्ध्वगति दें । शत्रुओं को नष्ट करें। इसको विशेष रूप से धारण करें । हम सभी समानतायुक्त पुरुषों की तुलना में श्रेष्ठ बने तथा विद्वेषी शत्रुओं को पददलित करें ॥११,१.२१॥

अभ्यावर्तस्व पशुभिः सहैनां प्रत्यङ्ङेनां देवताभिः सहैधि ।
मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः स्वे क्षेत्रे अनमीवा वि राज
॥११,१.२२॥

हे ज्ञानसम्पन्न ओदन ! आप इस भूमि को प्राप्त हों, देवताओं सहित इसके साथ मिल जाएँ। आपको शाप न लगे और बाधक अभिचार प्रभावित न करे । आप अपने निवास क्षेत्र में नीरोग रहकर प्रकाशित हों ॥११,१.२२॥

ऋतेन तष्टा मनसा हितैषा ब्रह्मौदनस्य विहिता वेदिरग्रे ।

अंसध्रीं शुद्धामुप धेहि नारि तत्रौदनं सादय दैवानाम् ॥११,१.२३॥

यज्ञ से बनी तथा मन से स्थापित यह ब्रह्मौदन की वेदिका सामने प्रतिष्ठित है। उस पर स्थाली स्थापित करके उसमें देवताओं के लिए अन्न तैयार करें ॥११,१.२३॥

अदितेर्हस्तां स्रुचमेतां द्वितीयां सप्तऋषयो भूतकृतो यामकृण्वन् ।
सा गात्राणि विदुष्योदनस्य दर्विर्वेद्यामध्येनं चिनोतु ॥११,१.२४॥

प्राणिमात्र के स्रष्टा सप्तर्षियों ने देवमाता अदिति के दूसरे हाथ के रूप में सुवा को बनाया है। यह सुवा ओदन के पक्व भाग को जानती हुई वेदिका के मध्य ज्ञाननिष्ठ ओदन की स्थाफ्ना करे ॥११,१.२४॥

शृतं त्वा हव्यमुप सीदन्तु दैवा निःसृप्याग्नेः पुनरेनान् प्र सीद ।
सोमेन पूतो जठरे सीद ब्रह्मणामार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥११,१.२५॥

तैयार हुए यज्ञ योग्य ओदन के समीप पूजनीय देवगण पधारें । हे ओदन ! आप अग्नि से बाहर आकर पुनः इन देवों को प्रसन्न करें। सोमरस से पवित्र होकर ब्रह्मनिष्ठों के उदर में प्रवेश करें। आपको ग्रहण करने वालेअषिगण दुखी न हों ॥११,१.२५॥

सोम राजन्त्संज्ञानमा वपैभ्यः सुब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।
ऋषीन् आर्षेयांस्तपसोऽधि जातान् ब्रह्मौदने सुहवा जोहवीमि ॥११,१.२६॥

है राजा सोम ! जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण आपके समीप बैठे हैं, उन्हें श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करें। हम उन आर्षेय ऋषियों को ब्रह्मौदन के लिए बार-बार आवाहित करते हैं ॥११,१.२६॥

शुद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमा ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि ।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददादिदं मे ॥११,१.२७॥

शुद्ध, पापरहित और दूसरों को पावन बनाने वाले यज्ञीय जल को विप्रजनों के हाथों पर छोड़ते हैं। हे जल ! जिस अभिलाषा से हम तुम्हारा अभिषिञ्चन करते हैं, उस अभीष्ट को मरुद्गणों के साथ इन्द्रदेव हमें प्रदान करें ॥११,१.२७॥

इदं मे ज्योतिरमृतं हिरण्यं पक्वं क्षेत्रात्कामदुघा म एषा ।
इदं धनं नि दधे ब्राह्मणेषु कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥११,१.२८॥

यह स्वर्ण अमर ज्योतिरूप है और खेत से प्राप्त यह शुद्ध औदन (परिपक्व अन्न) कामधेनु के समान है, जिसे हम दक्षिणा स्वरूप ज्ञानियों को प्रदान करते हैं। यह स्वर्ग में असंख्य गुना बढ़े। इससे हम पितरों के स्वर्गलोक का मार्ग प्रशस्त करते हैं ॥११,१.२८॥

अग्नौ तुषान् आ वप जातवेदसि परः कम्बूकामप मृड्ढि दूरम् ।
एतं शुश्रुम गृहराजस्य भागमथो विद्म निर्ऋतेर्भागधेयम् ॥११,१.२९॥

इस अन्न के तुषों (विकारों) को जातवेदा अग्नि में डाल दें, छिलकों को दूर फेंकें। यह (अन्न) सद्गृहस्थ के गृह का अंश है, ऐसा हमने सुना है । यह अतिरिक्त निति देवता का भाग है, ऐसा हम जानते हैं ॥११,१.२९॥

श्राम्यतः पचतो विद्धि सुन्वतः पन्थां स्वर्गमधि रोहयैनम् ।

येन रोहात्परमापद्य यद्वय उत्तमं नाकं परमं व्योम ॥११,१.३०॥

हे ज्ञानयुक्त ओदन ! आप तपः साधना करने वाले और सोमरस का अभिषवण करने वाले याजकों को समझें तथा स्वर्ग पथ की ओर इन्हें प्रेरित करें। दुःखों से रहित जो परम उत्कृष्ट स्वर्ग नामक अन्तरिक्ष है, उनमें ये यजमान उत्तम श्येनपक्षी की तरह, जिस प्रकार भी हो, ऊपर आरोहण कर सके, ऐसा प्रयत्न करें ॥११,१.३०॥

बभ्रेरध्वर्यो मुखमेतद्वि मृड्ढयाज्याय लोकं कृणुहि प्रविद्वान् । घृतेन गात्रानु सर्वा वि मृड्ढि कृण्वे पन्थां पितृषु यः स्वर्गः ॥११,१.३१॥

हे अध्वर्यु ! इस पोषक ओदन के ऊपरी भाग को भली प्रकार शुद्ध करें, तदुपरान्त ओदन के मध्य घृतसिंचन के लिए गर्तरूप स्थान बनाएँ तथा सभी अवयवों को घृत से सींचें । जो मार्ग पितरगणों के समीप स्वर्ग में ले जाता है, ओदन के माध्यम से हम उसी का निर्माण करते हैं ॥११,१.३१॥

बभ्रे रक्षः समदमा वपैभ्योऽब्राह्मणा यतमे त्वोपसीदान् ।

पुरीषिणः प्रथमानाः पुरस्तादार्षेयास्ते मा रिषन् प्राशितारः ॥११,१.३२॥

है ब्रह्मौदन ! जो अबाह्मण (ब्रह्मवृत्ति से विरत) तुम्हारे निकट (सेवन करने के उद्देश्य से) आएँ, उनमें से अहंकारी राक्षसों को दूर कर दें । आपका सेवन करने वाले अन्नार्थी यशस्वी ऋषिगण कभी विनष्ट न हों ॥११,१.३२॥

आर्षेयेषु नि दध ओदन त्वा नानार्षेयाणामप्यस्त्यत्र ।
अग्निर्मे गोप्ता मरुतश्च सर्वे विश्वे देवा अभि रक्षन्तु पक्वम् ॥११,१.३३॥

हे ओदन ! हम आपको अंष पुत्रों में स्थापित करते हैं, अनायों के भाग इसमें नहीं हैं। अग्निदेव और मरुद्गण इसके संरक्षक हैं तथा सम्पूर्ण देवगण भी इस परिपक्व ज्ञान, ब्रह्मौदन को चारों ओर से संरक्षण करें ॥११,१.३३॥

यज्ञं दुहानं सदमित्प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।
प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥११,१.३४॥

यह ब्रह्मौदन यज्ञों का उत्पादक होने से सदैव प्रवृद्ध करने वाला, धारणकर्ता एवं सम्पत्ति का घर है । हे ज्ञाननिष्ठ

ओदन ! हम आपके द्वारा पु-पौत्रादि प्रजा की पुष्टि, दीर्घायु और धन-सम्पदा प्राप्त करें ॥११,१.३४॥

वृषभोऽसि स्वर्ग ऋषीन् आर्षेयान् गछ ।
सुकृतां लोके सीद तत्र नौ संस्कृतम् ॥११,१.३५॥

हे अभीष्टपूरक ओदन ! आप स्वर्गलोक को प्रदान करने वाले हैं। अतः आप हमारे द्वारा प्रदत्त किये जाने पर आर्षेय ऋषियों को प्राप्त हों। तत्पश्चात् पुण्यात्माओं के स्वर्गधाम में स्थित हों । वहाँ हम दोनों को (भोक्ता-भोक्तव्यात्मक) संस्कार निष्पन्न होगा ॥११,१.३५॥

समाचिनुष्वानुसंप्रयाह्यग्ने पथः कल्पय देवयानान् ।
एतैः सुकृतैरनु गछेम यज्ञं नाके तिष्ठन्तमधि सप्तरश्मौ ॥११,१.३६॥

हे ओदन ! आप सुसंगत होकर गंतव्य स्थल में जाएँ । हे अग्निदेव ! आप देवयानमार्ग की रचना करें। हम भी पुण्यकर्मों के प्रभाव से सप्त किरणों से युक्त (दुःख रहित) स्वर्गलोक में स्थिर रहने वाले यज्ञ का अनुकरण करते हुए वहाँ पहुँचें ॥११,१.३६॥

येन देवा ज्योतिषा द्यामुदायन् ब्रह्मौदनं पक्त्वा सुकृतस्य लोकम् ।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं स्वरारोहन्तो अभि नाकमुत्तमम् ॥११,१.३७॥

जिस ज्ञानयुक्त अन्न (ब्रह्मौदन) द्वारा इन्द्रादि देवता देवयान मार्ग से स्वर्गलोक में गये हैं, हम भी उसी ब्रह्मौदन को पकाकर स्वर्गारूढ़ होकर श्रेष्ठ लोक को प्राप्त करें ॥११,१.३७॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त २- रुद्र सूक्त

भव और शर्व की स्तुति, पशपति को नमस्कार , अतिशय बलशाली रुद्र की स्तुति तथा रुद्र के आयुध

भवाशर्वौ मृडतं माभि यातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ।
प्रतिहितामायतां मा वि स्राष्टं मा नो हिंसिष्टं द्विपदो मा चतुष्पदः ॥११,२.१॥

हे भव और शर्व देवो ! आप दोनों हमें सुखी करें। संरक्षणार्थ हमारे सम्मुख रहें । हे प्राणियों के पालक एवं पशुपति ! आप दोनों को नमन है । आप अपने धनुष पर चढ़ाए और खींचे गए बाण को हमारे ऊपर न छोड़ेंआप हमारे द्विपादों-चतुष्पादों का विनाश न करें ॥११,२.१॥

शुने क्रोष्ट्रे मा शरीराणि कर्तमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये च कृष्णा अविष्यवः ।
मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विदन्त ॥११,२.२॥

हे संहारकारी देवो ! आप दोनों हमारी देहों को कुत्ते, गीदड़, मांसभक्षी गिद्धों और काले तथा हिंसक कौए इत्यादि के लिए काटने हेतु न दें, मक्खियाँ और पक्षी खाने के लिए इन कटे हुए शरीरों को न पाएँ ॥११,२.२॥

क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः ।
नमस्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षायामर्त्य ॥११,२.३॥

हे सर्व उत्पादक (भव) देव ! आपके क्रन्दन रूप शब्द और प्राण वायु के लिए हम प्रणाम करते हैं। आपके मोह- माया की ओर प्रेरित करने वाले शरीरों को प्रणाम है । हे अविनाशी रुद्रदेव ! हजारों नेत्रों से युक्त आपके प्रति हमारा प्रणाम है ॥११,२.३॥

पुरस्तात्ते नमः कृण्म उत्तरादधरादुत ।
अभीवर्गाद्दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः ॥११,२.४॥

हे रुद्रदेव ! हम आपके प्रति पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा में नमस्कार करते हैं । अन्तरिक्ष मण्डल के मध्य सर्व नियन्तारूप में स्थित हम आपको प्रणाम करते हैं ॥११,२.४॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ।

त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥११,२.५॥

हे पशुपालक, भवदेव ! आपके मुख, आँखों, त्वचा और नील, पीत आदि वर्ण के लिए प्रणाम है । आपकी समानतायुक्त दृष्टि और पृष्ठ भाग के लिए नमस्कार है ॥११,२.५॥

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वाया आस्याय ते ।
दन्द्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥११,२.६॥

हे पशुपतिदेव आपके उदर, जिह्वा, मुख, दाँत, घाणेन्द्रिय तथा अन्य अंगों के लिए हमारा नमस्कार है ॥११,२.६॥

अस्त्रा नीलशिखण्डेन सहस्राक्षेण वाजिना ।
रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥११,२.७॥

नील केशधारी, सहस्रनेत्रयुक्त, तीव्रगति वाले, अर्द्धसेना के विनाशक, रुद्रदेव से हम कभी पीड़ित न हों ॥११,२.७॥

स नो भवः परि वृणक्तु विश्वत आप इवाग्निः परि वृणक्तु नो भवः ।
मा नोऽभि मांस्त नमो अस्त्वस्मै ॥११,२.८॥

उत्पत्तिकर्ता भवदेव सभी प्रकार के कष्टों से हमें मुक्त करें। जिस प्रकार अग्निदेव जल का परित्याग कर देते हैं, वैसे ही रुद्रदेव हमें मुक्त रखें। वे हमें किसी प्रकार का कष्ट न दें। उन भवदेव को हम प्रणाम करते हैं ॥११,२.८॥

चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दश कृत्वः पशुपते नमस्ते ।
तवेमे पञ्च पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः ॥११,२.९॥

हे शबँदेव ! आपके लिए चार बार तथा भवदेव ! आपके लिए आठ बार नमस्कार है। पशुपते । आपके लिए दस बार प्रणाम है। ये गौ, घोड़े, भेडू बकरी और पुरुष आदि आपके आश्रित है ॥११,२.९॥

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेदमुग्रोर्वन्तरिक्षम् ।
तवेदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणत्पृथिवीमनु ॥११,२.१०॥

हे प्रचण्ड बलशाली दैव ! ये चारों दिया। आपकी ही हैं। ये स्वर्गलोकपृथ्वी और विशाल अन्तरिक्ष भी आपके ही शरीर है। एवी में जीवन प्रक्रिया शापके ही अनुशासन में चलती है। अतएव सभी पर अनुबई करने के लिए आप हीन्दी ॥११,२.१०॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्न् इमा विश्वा भुवनान्यन्तः। स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥११,२.११॥

हे पशुपालक रुद्रदेव ! जिसमें ये सम्पुर्ण लोक स्थित हैं, वे वसुओं के निवास रूप, विश्वरूप (अण्डको हात्मक) विशाल कोश आपके ही हैं। ऐसे आप सुखप्रदान करें, आपके लिए हमारा नमस्कार है।मांसभोजी सियार और कुत्ते आदि सभी इससे दूर हैं। मंगलकारी शब्दों से होने वाली, बालों को खोलकर चिल्लानेवाली पैशाचिक वृत्तियों से अन्य पती बाई ॥११,२.११॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्निं शतवधं शिखण्डिन् । रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥११,२.१२॥

हैं रुद्रदेव ! आपकी सुवर्णमय धनुष एक बार के प्रयास से हजारौं जीवों को समाप्त कर देता है, ऐसे शिखण्डों से युक्त अनुष को प्रणाम है। यह देवों का आयुधजिस दिशा में भी हों, उसी ओर उसे हमारा नमन है॥११,२.१२॥

योऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ।

पश्चादनुप्रयुङ्क्ते तं विद्धस्य पदनीरिव ॥११,२.१३॥

हे रुद्रदेव जो पलायनकर जाता है और छिपकर आपको हानि पहुंचाना चाहता है । आपघायल पदान्वेषी की तरह खोजकर उसका वध कर देते हैं ॥११,२.१३॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय ।
ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः ॥११,२.१४॥

भव और रुदेव समान मतवाले हैं। प्रचण्ड पराक्रमशाली अपना शौर्य प्रदर्शन करते हुए सर्व विचरण करते हैं। मैं जिस दिशा में विद्यमान हों, असौ और उन्हें हमारा नमस्कार है ॥११,२.१४॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते रुद्र तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥११,२.१५॥

हे रुद्रदेव ! हमारे संगच्च आते हुए, वापस जाते हुए, बैठे हुए और खड़े होने, सभी स्थितियों में आपके प्रति हमारा नमस्कार है ॥११,२.१५॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ।
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥११,२.१६॥

हे रुद्रदेव ! प्रातः, सायं, रात्रि और दिन सभी कालों में आपके प्रति हमारा प्रणाम है । भव और शर्व दोनों देवों के प्रति हम नमस्कार करते हैं ॥११,२.१६॥

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद्रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ।
मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥११,२.१७॥

हजारों नेत्रों से युक्त, अति सूक्ष्मद्रष्टा, पूर्व की ओर अनेक बाण छोड़ने वाले मेधावी और जिह्वा से सम्पूर्ण विश्व के भक्षणार्थ सर्वत्र संव्याप्त रुद्रदेव के समीप हमारा गमन न हो ॥११,२.१७॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ।
पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥११,२.१८॥

अरुण वर्ण के अश्वयुक्त काले अपवित्र के मर्दक, उन भयंकर महाकाल को, जिन्होंने (केशी नामक राक्षस के) रथ को धराशायी किया था, उन्हें हम पहले से जानते हैं- वे हमारा प्रणाम स्वीकार करें ॥११,२.१८॥

मा नोऽभि स्रा मत्यं देवहेतिं मा नः क्रुधः पशुपते नमस्ते ।
अन्यत्रास्मद्दिव्यां शाखां वि धूनु ॥११,२.१९॥

हे पशुपतिदेव ! अपने आयुध हमारी ओर न फेंकें । आप हमारे ऊपर क्रोधित न हों, आपके प्रति हमारा नमस्कार है । अपने देवास्त्र को हमसे दूर फेंकें ॥११,२.१९॥

मा नो हिंसीरधि नो ब्रूहि परि णो वृङ्धि मा क्रुधः ।
मा त्वया समरामहि ॥११,२.२०॥

आप हमारी हिंसा न करें, हमें (अच्छे-बुरे के सम्बन्ध में) समझाएँ । हमारे ऊपर क्रोधित न होकर संरक्षण बनाये रखें। आपके प्रति कभी हमारा विरोध न रहे ॥११,२.२०॥

मा नो गोषु पुरुषेषु मा गृधो नो अजाविषु ।
अन्यत्रोग्र वि वर्तय पियारूणां प्रजां जहि ॥११,२.२१॥

हे उग्रवीर ! आप हमारे गौ, मनुष्य, भेड़-बकरियों की कामना न करें। आप अपने शस्त्र को अन्यत्र देवहिंसकों की प्रजा पर छोड़कर उनका विनाश करें ॥११,२.२१॥

यस्य तक्मा कासिका हेतिरेकमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एति ।
अभिपूर्वं निर्णयते नमो अस्त्वस्मै ॥११,२.२२॥

जिन रुद्रदेव के आयुध क्षय, ज्वर और खाँसी हैं, बलशाली घोड़े के हिनहिनाने के समान ही पूर्व लक्षित मनुष्य के प्रति जिनके आयुध जाते हैं, उन उग्र रुद्रदेवता के लिए हमारा नमस्कार है ॥११,२.२२॥

योऽन्तरिक्षे तिष्ठति विष्टभितोऽयज्वनः प्रमृणन् देवपीयून् ।
तस्मै नमो दशभिः शक्करीभिः ॥११,२.२३॥

जो (रुद्रदेव) अन्तरिक्ष मण्डल में विराजमान रहते हुए यज्ञभाव से विहीन देवविरोधियों को नष्ट करते हैं, हम उन रुद्रदेव के लिए दसों शक्तियों (अँगुलियों) के साथ प्रणाम करते हैं ॥११,२.२३॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।
तव यक्षं पशुपते अप्स्वन्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥११,२.२४॥

हे पशुपतिदेव ! जंगली मृगादि पशु, हंस, गरुड़, शकुनि और अन्य वनचर पक्षी आदि आपके ही हैं । आपका पूजनीय आत्मतेज अप् प्रवाहों में स्थित है, अतएव आपको अभिषिक्त करने के लिए ही दिव्य जल प्रवाहित होता है ॥११,२.२४॥

शिंशुमारा अजगराः पुरीकया जषा मत्स्या रजसा येभ्यो अस्यसि ।
न ते दूरं न परिष्ठास्ति ते भव सद्यः सर्वां परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्त्समुद्रे ॥११,२.२५॥

घड़ियाल, अजगर, कछुए, मछली और जलचर प्राणियों पर आप अपने तेज आयुधों को फेंकते हैं। है। रुद्रदेव ! आपकी सीमा से परे कुछ भी नहीं । आप सम्पूर्ण भूमण्डल को एक ही दृष्टि से देखने में समर्थ हैं। आप पूर्व और उत्तरे समुद्रों तक में व्याप्त पृथ्वी पर आघात करते हैं ॥११,२.२५॥

मा नो रुद्र तक्मना मा विषेण मा नः सं स्रा दिव्येनाग्निना ।
अन्यत्रास्मद्विद्युतं पातयैताम् ॥११,२.२६॥

हे रुद्रदेव ! आप ज्वरादि रोगों से हमें पीड़ित न करें, स्थावर और जंगम के विष से भी हमें बचाएँ । विद्युत् रूप आग्नेयास्त्र हमसे दूर किसी भिन्न स्थान पर गिराएँ ॥११,२.२६॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्वन्तरिक्षम् ।
तस्यै नमो यतमस्यां दिशीतः ॥११,२.२७॥

भगदेव द्युलोक के अधीश्वर हैं और भू-मण्डल के स्वामी हैं। वे द्यावा-पृथिवी के मध्य विस्तृत अन्तरिक्ष लोक को भी अपने तेजस् से परिपूर्ण करते हैं। उत्पत्तिकर्ता देव यहाँ से जिस दिशा में हों, उसी ओर उन्हें हमारा नमस्कार है ॥११,२.२७॥

भव राजन् यजमानाय मृड पशूनां हि पशुपतिर्बभूथ ।
यः श्रद्दधाति सन्ति देवा इति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥११,२.२८॥

हे उत्पत्तिकर्ता देवराज ! आप याज्ञिक यजमानों को सुखी करें, आप पशुओं के अधिपति हैं । जो श्रद्धालु मनुष्य इन्द्रादि देवों को संरक्षक मानते हैं, उनके द्विपाद और चतुष्पाद जीवों को सुख प्रदान करें ॥११,२.२८॥

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा नो वहन्तमुत मा नो वक्ष्यतः ।
मा नो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वं रुद्र मा रीरिषो नः ॥११,२.२९॥

हे रुद्रदेव ! आप हमारे शिशुओं, वृद्धों एवं समर्थ पुरुषों का संहार न करें । हमारे वीर पुरुषों को विनष्ट न करें। आप

हमारे माता-पिता और शरीर को भी पीड़ित न करें ॥११,२.२९॥

रुद्रस्यैलबकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ।
इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥११,२.३०॥

रुद्रदेव के प्रेरणायुक्त कर्मों में तत्पर प्रमथगणों और कटुभाषी गणों को हम नमस्कार करते हैं। मृगया विहार के निमित्त किरात वेशधारी भवदेव के विस्तृत मुख युक्त श्वानों को नमन करते हैं ॥११,२.३०॥

नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ।
नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ।
नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्ति नो अभयं च नः ॥११,२.३१॥

हे रुद्रदेव ! आपकी विस्तृत घोषयुक्त शब्दों वाली, केशधारी, नमस्कारों से शोभित और संयुक्तरूप से भोजन ग्रहण करने वाली सेनाओं को प्रणाम है । हे देव ! आपकी कृपा से हमें मंगल और निर्भयता प्राप्त हो ॥११,२.३१॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ३- ओदन सूक्त

बहस्पति का भोजन तथा औदन की महिमा जानने वाला प्रसिद्ध गुरु

तस्यौदनस्य बृहस्पतिः शिरो ब्रह्म मुखम् ॥११,३.१॥

उस ओदन (अन्न) का सिर बृहस्पतिदेव हैं और ब्रह्म उसका मुख है ॥११,३.१॥

द्यावापृथिवी श्रोत्रे सूर्याचन्द्रमसावक्षिणी सप्तऋषयः प्राणापानाः ॥११,३.२॥

द्यावा और पृथ्वी इसके कान हैं, सूर्य और चन्द्रमा इस अन्न तत्त्व के नेत्र हैं। जो मरीचि आदि सप्तर्षि हैं, वे इसके प्राण और अपान हैं ॥११,३.२॥

चक्षुर्मुसलं काम उलूखलम् ॥११,३.३॥

धान्यकणों को कूटने वाला मूसल ही इसकी दृष्टि है और ओखली ही इसकी अभिलाषा है ॥११,३.३॥

दितिः शूर्पमदितिः शूर्पग्राही वातोऽपाविनक्॥११,३.४॥

दिति (विभाजक शक्ति) ही इसका सूप है और सूप को धारण करने वाली अदिति (अखण्ड शक्ति) है, वायुदेव (कणों-तुषों) को पृथक् करने वाले हैं ॥११,३.४॥

अश्वाः कणा गावस्तण्डुला मशकास्तुषाः ॥११,३.५॥

इस विराट् अन्न के कण ही अश्व हैं, चावल गौएँ हैं और पृथक् किया गया भूसा ही मच्छर हैं ॥११,३.५॥

कब्रु फलीकरणाः शरोऽभ्रम् ॥११,३.६॥

नाना – प्रकार के दृश्य उसके (ब्रह्मौदन के) छिलके हैं, मेघ ही ऊपरी सतह (सिर) है ॥११,३.६॥

श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम् ॥११,३.७॥

काले रंग की धातु (लोहा) इसका मांस और लाल रंग का (ताँबा) इस अन्न तत्व का रक्त है ॥११,३.७॥

त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः ॥११,३.८॥

ओदन पकने के बाद जो भस्म शेष रहती है, वह सीसा है, जो सुवर्ण है, वही अन्न का वर्ण और जो कमल है, वही अन्न की गन्ध है ॥११,३.८॥

खलः पात्रं स्फ्यावंसावीषे अनूक्ये ॥११,३.९॥

खलिहान इसके पात्र हैं, शकट के अवयव इसके कंधे हैं और ईषा (नामक शकट का अवयव) हँसली (कंधे की अस्थियौ है ॥११,३.९॥

आन्त्राणि जत्रवो गुदा वरत्राः ॥११,३.१०॥

बैलों के गले में बँधी हुई रस्सियाँ ही इसकी आँतें और चर्म रज्जु ही गुदा भाग है ॥११,३.१०॥

इयमेव पृथिवी कुम्भी भवति राध्यमानस्यौदनस्य द्यौरपिधानम् ॥११,३.११॥

यह विस्तृत भूमि ही ओदन पाक के निमित्त कुम्भीरूपा है और द्युलोक ही इसका ढक्कन है ॥११,३.११॥

सीताः पर्शवः सिकता ऊबध्यम् ॥११,३.१२॥

जुताई की गहरी लकीरें इसकी पसलियाँ और नदी आदि में जो रेत है, वह मलस्थान है ॥११,३.१२॥

ऋतं हस्तावनेजनं कुल्योपसेचनम् ॥११,३.१३॥

जल इसका हस्त प्रक्षालक है और छोटी-छोटी नदियाँ इस (ओदन) की अभिषिञ्चक हैं ॥११,३.१३॥

ऋचा कुम्भ्यधिहितार्त्विज्येन प्रेषिता ॥११,३.१४॥

कुम्भी ऋग्वेद द्वारा अग्नि पर रखी गयी है और यजुर्वेद द्वारा हिलायी गयी है ॥११,३.१४॥

ब्रह्मणा परिगृहीता साम्ना पर्यूढा ॥११,३.१५॥

अथर्ववेद द्वारा इसे धारण किया गया (पकड़ा गया) है और सामवेदीय मंत्रों से इसे घेरा गया है ॥११,३.१५॥

बृहदायवनं रथन्तरं दर्विः ॥११,३.१६॥

बृहत्साम ही जल में डाले गये चावलों को मिलाने वाला (काष्ठ) है और रथन्तरसाम ओदन निकालने का उपकरण(करछी) है ॥११,३.१६॥

ऋतवः पक्तार आर्तवाः समिन्धते ॥११,३.१७॥

ऋतुएँ इस अन्न को पकाने वाली हैं और इनके (ऋतुओं के) दिवस-रात्रि इसकी (ओदन की) अग्नि के प्रज्वलनकर्ता हैं ॥११,३.१७॥

चरुं पञ्चबिलमुखं घर्मोऽभीन्धे ॥११,३.१८॥

पाँच मुखों से युक्त पात्र में स्थित चावल को सूर्य की गर्मी उबालती है ॥११,३.१८॥

ओदनेन यज्ञवतः सर्वे लोकाः समाप्याः ॥११,३.१९॥

इस ओदन यज्ञ द्वारा समस्त लोकों को अभिलषित फल की प्राप्ति होती है ॥११,३.१९॥

यस्मिन्त्समुद्रो द्यौर्भूमिस्त्रयोऽवरपरं श्रिताः ॥११,३.२०॥

जिस ब्रह्मौदन के ऊपर और नीचे समुद्र, द्युलोक तथा पृथ्वी तीनों ही आश्रित हैं ॥११,३.२०॥

यस्य देवा अकल्पन्तोच्छिष्टे षडशीतयः ॥११,३.२१॥

उस(ओदन) के उच्छिष्ट (शेष बचे अंश) से छह अस्सी देव प्रकट हुए ॥११,३.२१॥

तं त्वौदनस्य पृछामि यो अस्य महिमा महान् ॥११,३.२२॥

उस ओदन की जो महत्ता है, उसके सम्बन्ध में हम (तत्त्वदर्शियों से पूछते हैं ॥११,३.२२॥

स य ओदनस्य महिमानं विद्यात्॥११,३.२३॥

जो इस अन्न की महिमा के ज्ञाता हैं, वे यह (रहस्य) समझें ॥११,३.२३॥

नाल्प इति ब्रूयान् नानुपसेचन इति नेदं च किं चेति ॥११,३.२४॥

वे इसे कम ने कहें, वह असिंचित है यह भी न कहें तथा वह क्या है ? ऐसा भी न कहें ॥२४॥

यावद्दाताभिमनस्येत तन् नाति वदेत्॥२५॥

दाता ने जितना दिया है, उससे अधिक न चाहें ॥११,३.२५॥

ब्रह्मवादिनो वदन्ति पराञ्चमोदनं प्राशी३ प्रत्यञ्चा३ इति ॥२६॥

(ब्रह्मज्ञानी विचारक परस्पर वार्तालाप करते हैं) आपने आगे (सामने) के ओदन का सेवन किया है अथवा पीछे (पराङ्मुख) स्थित अन्न को ग्रहण किया ॥११,३.२६॥

त्वमोदनं प्राशी३ त्वामोदना३ इति ॥११,३.२७॥

आपने ओदन का भक्षण किया है अथवा ओदन ने ही आपका प्राशन किया है ॥११,३.२७॥

पराञ्चं चैनं प्राशीः प्राणास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥११,३.२८॥

यदि आपने पराङ्मुख स्थित ओदन का सेवन किया है, तो प्राणवायु आपको त्याग देगी, ऐसा इनसे (सेवनकर्ताओं से कहा जाए ॥११,३.२८॥

प्रत्यञ्चं चैनं प्राशीरपानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ॥११,३.२९॥

यदि आपने सम्मुख उपस्थित ओदन का सेवन किया है, तो अपान वायु की वृत्तियाँ आपका परित्याग करेंगी। विद्वान् इस प्रकार इसके सेवनकर्ता से कहें ॥११,३.२९॥

नैवाहमोदनं न मामोदनः ॥११,३.३०॥

न मैंने ओदन का सेवन किया है, और न ही अन्न ने मेरा प्राशन किया है ॥११,३.३०॥

ओदन एवौदनं प्राशीत्॥११,३.३१॥

वास्तव में अन्न ही अन्न का सेवन करता है ॥११,३.३१॥

ततश्चैनमन्येन शीर्ष्णा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ज्येष्ठतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
बृहस्पतिना शीर्ष्णा ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३२॥

पूर्व अनुष्ठाता अषियों ने जिस सिर से ओदन का प्राशन किया था, यदि इसके अतिरिक्त दूसरे सिर से आप प्राशन करते हैं, तो ज्येष्ठ सन्तान से प्रारंभ होकर क्रमश: आपकी सन्ततियों के विनष्ट होने की संभावना है; ऐसी ज्ञाता पुरुष उसमे (प्राशनकर्ता स) कहे । प्राशिता कहे- मैंने अभिमुख (आगे) और पराङ्मुख (पीछे) की स्थिति में भी इस अन्न का सेवन नहीं किया । पूर्व ऋषियों ने बृहस्पति से सम्बन्धित सिर से इसका प्राशन किया, मैंने भी अन्न सम्बन्धी सिर से उसी प्रकार सेवन किया। ओदन ने ही ओदन का प्राशन किया है । इस प्रकार यह प्राशित अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन के प्राशन को जानता है, वही सर्वांगपूर्ण होकर पुण्यमय स्वर्गलोक में विराजता है ॥११,३.३२॥

ततश्चैनमन्याभ्यां श्रोत्राभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बधिरो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
द्यावापृथिवीभ्यां श्रोत्राभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३३॥

पूर्व ऋषियों की रीति से भिन्न यदि आपने दूसरे कानों से इसका (ओदन का) प्राशन किया, तो बधिर दोष से दुःखी होंगे, (ज्ञाता मनुष्य प्राशनकर्ता से) यह कहे । प्राशिता कहे- द्यावा-पृथिवी रूप कानों से मैंने इस अन्न का सेवन किया और उससे उसके वांछित फल को प्राप्त किया। इसमें दोष की सम्भावना नहीं । इस प्रकार सेवन किया हुआ ओदन सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण हो जाता है, इस प्रकार जो इसे जानता है, वह सर्वांगपूर्णफल को प्राप्त करते हुए पुण्यमय स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥११,३.३३॥

ततश्चैनमन्याभ्यामक्षीभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अन्धो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सूर्याचन्द्रमसाभ्यामक्षीभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३४॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन नेत्रों से प्राशन किया था, उनसे भिन्न यदि आपने दूसरे लौकिक नेत्रों से सेवन किया, तो नेत्रहीनता का दोष लगेगा, ऐसा इससे (सेवनकर्ता से) कहे । (सेवनकर्ता कहे) मैंने इस अन्न को अभिमुख और पराङ्मुख होकर ग्रहण नहीं किया, अपितु उसका सूर्य-चन्द्ररूपी नेत्रों से सेवन किया, जिससे अभीष्ट फल को प्राप्त किया। अत: यह अन्न परिपूर्ण अङ्ग अवयवों से युक्त हैं । इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण फल को उपलब्ध करते हुए पुण्यप्रद स्वर्गादि लोकों में पहुँचते हैं ॥११,३.३४॥

ततश्चैनमन्येन मुखेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
मुखतस्ते प्रजा मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ब्रह्मणा मुखेन ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३५॥

जिस ब्रह्मात्मक मुख से प्राचीन ऋषियों ने ओदन का प्राशन किया था, यदि आप उनसे भिन्न दूसरी रीति से इसका सेवन करेंगे, तो आपके समक्ष ही सन्तति का विनाश होगा, यह

सेवनकर्ता को बताएँ । (सेवनकर्ता का कथन) मैंने इस अन्न का अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में प्राशन नहीं किया है; किन्तु ब्रह्मरूपी मुख से इसका सेवन किया है। उसी ब्राह्मी मुख से इसे यथेष्ट स्थल तक पहुँचाया है, इस प्रकार यह सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण होकर सम्पूर्ण फल को ज्ञाता से कहता है । जो मनुष्य इस प्रकार से ओदन- प्राशन की विधि से परिचित हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करके घुण्यफल का उपभोग करने वाले स्वर्गादि लोक को प्राप्त करते हैं ॥११,३.३५॥

ततश्चैनमन्यया जिह्वया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
जिह्वा ते मरिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अग्नेर्जिह्वया ।
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३६॥ [५]

पूर्व ऋषियों ने जिस जिह्वा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरी (लौकिक) जिह्वा से इसका सेवन करने पर आपकी जिह्वा की सामर्थ्य (प्रभावक्षमता) समाप्त हो जाएगी, ऐसा उससे (प्राशनकर्ता से) कहे । प्राशिता का

कथन- इस अन्ने का हमने अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में सेवन नहीं किया, अग्निरूपी जिह्वा से हमने इसको ग्रहण किया, वहीं प्राशिता और अन्न की जिह्वा है, जिससे उसके फल को प्राप्त किया। अत: यह अन्न सभी अंगों और अवयवों से परिपूर्ण है। इस प्रकार से जो इसे जानते हैं, वे सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हुए पुण्य फलरूप स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥११,३.३६॥

ततश्चैनमन्यैर्दन्तैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
दन्तास्ते शत्स्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतुभिर्दन्तैः ।
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३७॥

प्राचीनकालीन ऋषिगणों ने जिन दाँतों से अन्न का भक्षण किया था, उनसे भिन्न दूसरे (लौकिक) दाँतों से सेवन करने की स्थिति में आपके दाँत गिर जाएँगे, ऐसा उससे (प्राशिता से) कहे । प्राशिता का कथन -) इस ओदन को हमने अभिमुख और पराङ्मुख अवस्था में सेवन नहीं किया, अपितु इसे वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुरूप दाँतों से प्राशित

किया है, इस प्रकार सेवित अन्न सर्वांगपूर्ण फल को प्रदान करता है। इस प्रकार से जानने वाला ज्ञानी पुरुष सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होता है ॥११,३.३७॥

ततश्चैनमन्यैः प्राणापानैः प्राशीर्यैश्चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
प्राणापानास्त्वा हास्यन्तीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सप्तऋषिभिः प्राणापानैः ।
तैरेनं प्राशिषं तैरेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३८॥

पूर्व पुरुषों ने जिन प्राणों, अपानों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी स्थिति में (लौकिक प्राणापानों से) सेवन करने पर प्राण और अपानरूप मुख्य प्राण आपका परित्याग कर देंगे, ऐसा प्राशिता से कहे । (प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख और पराङ्मुख किसी भी स्थिति में अन्न का सेवन नहीं किया, अपितु सप्तर्षिरूप प्राणों-अपानों से इसका प्राशन किया है । इस प्रकार सेवित अन्न सम्पूर्ण फल को प्रदान करता है। इस प्रकार जो मनुष्य इस ओदन-प्राशन की विधि को जानता है, वह सर्वांगपूर्ण फल को प्राप्त

करता हुआ, इसके पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥११,३.३८॥

ततश्चैनमन्येन व्यचसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
राजयक्ष्मस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अन्तरिक्षेण व्यचसा ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.३९॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिस विधि से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न अन्य विधियों से (लौकिक रूप से) इसका सेवन किये जाने पर राजयक्ष्मा रोग आपका विनाश करेगा, ऐसा इससे (प्राशनकर्ता से) कहे। (प्राशनकर्ता कहे-) हमने अभुिमख और पराङ्मुख स्थिति में इसका सेवन न करके अन्तरिक्षात्मक विधि से (अन्तः प्राण से) इसका सेवन किया है और इससे अभीष्ट फलों को प्राप्त किया है। जो प्राशनकर्ता इस प्रकार से ओदन प्राशन की विधि को जानते हैं; वे अभीष्ट फल को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥११,३.३९॥

ततश्चैनमन्येन पृष्ठेन प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
विद्युत्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
दिवा पृष्ठेन ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४०॥

जिस पृष्ठ से प्राचीन ऋषियों ने इस ओदन का सेवन किया, उसके अतिरिक्त यदि किसी पृष्ठ भाग से प्राशन करेंगे, तो विद्युत् आपको विनष्ट कर देगी, ऐसा (प्राशिता से) कहे । (प्राशिता कहे-) हमने इसका अभिमुख और पराङ्मुख होकर सेवन नहीं किया, अपितु द्यौरूपी पृष्ठ से इसका प्राशन किया है, उसी से इसे यथेष्ट स्थल पर प्रेरित किया है । इस प्रकार से सेवन किया गया यह अन्न अभीष्ट फलदायी होता है । जो साधक इस प्रकार से इस ओदन-प्राशन के सम्बन्ध में जानते हैं, वे पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में सर्वांगपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करते हैं ॥११,३.४०॥

ततश्चैनमन्येनोरसा प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
कृष्या न रात्स्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।

पृथिव्योरसा ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४१॥

जिस वक्षस्थल से प्राचीन ज्ञानियों (ऋषियों) ने इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न दूसरे वक्षस्थल से सेवन किये जाने पर कृषि कार्य में समृद्ध नहीं होंगे, ऐसा प्रोशिता से कहे । (प्राशिता कहे-) हमने पराङ्मुख अथवा अभिमुख होकर इस अन्न का प्राशन नहीं किया, अपितु पृथ्वीरूप वक्षस्थल से ओदन का प्राशन किया और उसे यथेष्ट स्थल की ओर प्रेरित किया है। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो साधक इसके सम्बन्ध में इस प्रकार ३ न रखता है, वह पुण्यभूत स्वार्गादि के सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता हैं ॥११,३.४१॥

ततश्चैनमन्येनोदरेण प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
उदरदारस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्येनोदरेण ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।

सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४२॥

पूर्वकालीन पुरुषों ने जिस उदर से अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न दूसरे ढंग से प्राशन करने की स्थिति में उदर के लिए कष्टदायीं अतिसार नामक रोग से आपका विनाश होगा, ऐसा (प्राशिता से) कहे। (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में मैंने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सत्यरूपी उदर से इसका प्राशन किया, जिससे इसके दोष से मुक्त होकर यथेष्ट स्थल में इसे प्रेषित किया है । इस प्रकार से सेवित यह ओदन सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो साधक इस विधि से इससे (ओदन- प्राशन से) संबंधित जानकारी रखता है, वह इसके सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि को उपलब्ध करता है ॥११,३.४२॥

ततश्चैनमन्येन वस्तिना प्राशीर्येन चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्सु मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
समुद्रेण वस्तिना ।
तेनैनं प्राशिषं तेनैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४३॥

प्राचीन ऋषियों ने जिस वस्ति (मूत्राशय) द्वारा ओदन का सेवन किया था, उससे भिन्न दूसरी विधि से इसके सेवन से आपकी जल में मृत्यु होगी, ऐसा(प्राशनकर्ता से) कहे ।(प्राशिता कहे) मैंने अभिमुख अथवा पराङ्मुख अवस्था में इसका प्राशन नहीं किया है, अपितु समुद्र रूपी वस्ति से ओदन का प्राशन किया है, इससे दोषमुक्त होने पर उसके यथेष्ट लाभ को प्राप्त किया है। इस प्रकार सेवितं यह अन्न सम्पूर्ण अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस विधि का ज्ञाता सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट लाभ प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है ॥११,३.४३॥

ततश्चैनमन्याभ्यामूरुभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ऊरू ते मरिष्यत इत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
मित्रावरुणयोरूरुभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४४॥

प्राचीन अषियों ने जिन जंघाओं से इस ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन से जंघाएँ विनष्ट हो जाएँगी, ऐसा (सेवनकर्ता से) कहे ।(प्राशिता कहे-) हमने अभिमुख अथवा पराङ्मुख स्थिति में ओदन का प्राशन नहीं किया। अपितु मित्रावरुण रूपी जंघाओं से इसका सेवन करके उसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया। इस प्रकार से प्राशित यह अन्न सर्वाङ्गपूर्ण हो जाता है, जो इस प्रकार से इसके सम्बन्ध में ज्ञान रखता है, वह सर्वाङ्गपूर्ण फलों को प्राप्त करते हुए पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों का अधिकारी होता है ॥११,३.४४॥

ततश्चैनमन्याभ्यामष्ठीवद्भ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
स्रामो भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
त्वष्टुरष्ठीवद्भ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४५॥

पूर्व औषयों ने जिन अस्थियुक्त जानुओं (घुटनों) से इस अन्न का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसके सेवन किये

जाने से जानु भाग सूख जाएगा, ऐसा (सेवनकर्ता से) कहे । (प्राशिता कहे-) मैंने अभिमुख (सामने) या पराङ्मुख (पीछे) स्थिति में इसका सेवन नहीं किया, अपितु त्वष्टादेव के जानुओं से ओदन- प्राशन किया और उनसे उसे यथेष्ट स्थान की ओर प्रेषित किया। इस प्रकार सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण हैं । इस प्रकार जो इसकी विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥११,३.४५॥

ततश्चैनमन्याभ्यां पादाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
बहुचारी भविष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
अश्विनोः पादाभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४६॥

पूर्व ज्ञानी पुरुषों ने जिन पैरों से ओदन का सेवन किया, उनसे भिन्न दूसरी विधि से सेवन किये, जाने पर आपको बहुत अधिक चलने (निरर्थक चलने वाले) का पाप लगेगा, ऐसा (सेवनकर्ता से) कहे । (प्राशिता कहे-) सामने या पीछे

से मैंने ओदन का प्राशन नहीं किया, अपितु अश्विनीकुमारों के पैरों से मैंने इसका सेवन किया, जिससे यथेष्ट स्थल की ओर इसे प्रेषित किया है । इस प्रकार के प्राशन से यह सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । इस प्रकार से जो इससे सम्बंधित विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करते हैं ॥११,३.४६॥

ततश्चैनमन्याभ्यां प्रपदाभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
सर्पस्त्वा हनिष्यतीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सवितुः प्रपदाभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४७॥

प्राचीन ऋषियों ने जिन पंजों (पदाग्र भाग) से इस ओदन का सेवन किया, उससे भिन्न विधि से इसका सेवन करने पर सर्प दंश से मृत्यु को प्राप्त होगा, ऐसा (सेवनकर्ता से) कहे । (प्राशिता कहे-) अभिमुख अथवा पराङ्मुख दोनों ही अवस्थाओं में हमने इसका सेवन नहीं किया, अपितु सवितादेव के पंजों से इसका प्राशन किया है, इस स्थिति में

दोषमुक्त होकर यह यथास्थान पहुँचा है । इस प्रकार से सेवित अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है। इस प्रकार की विधि का ज्ञाता मनुष्य इसके सर्वाङ्पूर्ण अभीष्ट फलों के पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों को प्राप्त करता है ॥११,३.४७॥

ततश्चैनमन्याभ्यां हस्ताभ्यां प्राशीर्याभ्यां चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
ब्राह्मणं हनिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
ऋतस्य हस्ताभ्याम् ।
ताभ्यामेनं प्राशिषं ताभ्यामेनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४८॥

पूर्वकालीन ज्ञानियों ने जिन हाथों से ओदन का प्राशन किया, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आपको ब्रह्महत्या का दोष लगेगा, (अभिज्ञ पुरुष प्राशिता से) ऐसा कहे (प्राशिता कहे-) समक्ष अथवा पृष्ठभाग (पराङ्मुख) से हमने इसका प्राशन नहीं किया, अपितु परब्रह्म के सत्यरूप हाथों से इसका सेवन किया और उन्हीं से इसके यथेष्ट फल की प्राप्ति की है अथवा इसे यथास्थान पहुँचाया है । इस प्रकार सेवन किया गया अन्न सभी अंग- अवयवों से परिपूर्ण

होता है । जो साधक इस प्रकार से इस प्राश- विधि का ज्ञाता है, वह पुण्यभूत स्वर्गलोक में सर्वाङ्गपूर्ण अभीष्ट फलों को प्राप्त करता है ॥११,३.४८॥

ततश्चैनमन्यया प्रतिष्ठया प्राशीर्यया चैतं पूर्व ऋषयः प्राश्नन् ।
अप्रतिष्ठानोऽनायतनो मरिष्यसीत्येनमाह ।
तं वा अहं नार्वाञ्चं न पराञ्चं न प्रत्यञ्चम् ।
सत्ये प्रतिष्ठाय ।
तयैनं प्राशिषं तयैनमजीगमम् ।
एष वा ओदनः सर्वाङ्गः सर्वपरुः सर्वतनूः ।
सर्वाङ्ग एव सर्वपरुः सर्वतनूः सं भवति य एवं वेद ॥११,३.४९॥ [१८]

प्राचीन ऋषयों ने जिस ब्रह्मात्मक प्रतिष्ठा से ओदन का प्राशन किया था, उससे भिन्न रीति से इसके सेवन से आप अपनी प्रतिष्ठा खो देंगे, ऐसा (प्राशिता से) कहे । (प्राशिता कहे-) अभिमुख और पराङ्मुख स्थिति में हमने इसे ग्रहण नहीं किया, अपितु ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर संसार के प्रतिष्ठाभूत ब्रह्म से इसका प्राशन किया और इसके यथेष्ट फल को प्राप्त किया है । इस प्रकार से सेवित यह अन्न सभी अंग-अवयवों से परिपूर्ण है । जो साधक पुरुष इस प्रकार से इस अन्न सेवन की विधि के ज्ञाता हैं, वे सर्वाङ्गपूर्ण

अभीष्ट फलों के प्रदाता पुण्यभूत स्वर्गादि लोकों में विराजमान होते हैं ॥११,३.४९॥

एतद्वै ब्रध्नस्य विष्टपं यदोदनः ॥११,३.५०॥

यह (उक्त महिमायुक्त) जो ओदन है, उसका स्वरूप सूर्य मण्डलात्मक है ॥११,३.५०॥

ब्रध्नलोको भवति ब्रध्नस्य विष्टपि श्रयते य एवं वेद ॥११,३.५१॥

जो मनुष्य ओदन के ज्ञाता हैं, वे सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं ॥११,३.५१॥

एतस्माद्वा ओदनात्त्रयस्त्रिंशतं लोकान् निरमिमीत प्रजापतिः ॥११,३.५२॥

प्रजापति ने इस महिमाशाली ओदन से तैतीस लोकों की रचना की ॥११,३.५२॥

तेषां प्रज्ञानाय यज्ञमसृजत ॥११,३.५३॥

उन लोकों के प्रज्ञान (प्रकृष्ट ज्ञान या पहचान) के लिए ही यज्ञीय विज्ञान का निर्माण किया गया ॥११,३.५३॥

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥११,३.५४॥

इस तथ्य के ज्ञाता के जो निंदक होते हैं, वे अपने प्राण की गति को रोक देते हैं (मृत्यु को प्राप्त होते हैं) ॥११,३.५४॥

न च प्राणं रुणद्धि सर्वज्यानिं जीयते ॥११,३.५५॥

इससे उसकी प्राणशक्ति का ही क्षय नहीं होता, अपितु उसका सम्पूर्ण अस्तित्व समाप्त हो जाता है ॥११,३.५५॥

न च सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥११,३.५६॥

उसका सर्वस्व नाश ही नहीं होता, अपितु उसके प्राण असमय में ही उसका परित्याग कर देते हैं ॥११,३.५६॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ४- प्राण सूक्त

ओदन का खाया जाना, ओदन की स्थिति, प्राण के लिए नमस्कार तथा प्राण अर्थात सूर्य देव

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥११,४.१॥

जिस प्राण के अधीन यह सम्पूर्ण विश्व है, उस प्राण के लिए हमारा नमन है । वहीं प्राण सभी प्राणियों का ईश्वर है और उसी में सम्पूर्ण विश्व विराजमान है ॥११,४.१॥

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते ॥११,४.२॥

है प्राण ! आप शब्दध्वनि करने वाले और मेघों में गर्जना करने वाले हैं, आपके निमित्त प्रणाम है। आप विद्युत् रूप में चमकने वाले और जल वृष्टि करने वाले हैं, आपको हमारा नमन है ॥११,४.२॥

यत्प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दत्योषधीः ।
प्र वीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते ॥११,४.३॥

हे प्राण ! जिस समय आप मेघों द्वारा ओषधियों को अभिलक्षित करते हुए, महान् गर्जना करते हैं, तब ओषधियाँ तेजस्वी होती हैं और गर्भ को धारण करके विविध प्रकार से विस्तार प्राप्त करती हैं ॥११,४.३॥

यत्प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्वं तदा प्र मोदते यत्किं च भूम्यामधि ॥११,४.४॥

वर्षाकाल में जब प्राण ओषधियों को लक्षित करके गर्जना करते हैं, तब उस समय सभी हर्षित होते हैं। भूमि के सम्पूर्ण प्राणी आनन्द- विभोर हो जाते हैं ॥११,४.४॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
पशवस्तत्प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥११,४.५॥

जब प्राणदेव जल वृष्टि द्वारा विस्तृत भूक्षेत्र को सींचते हैं, उस समय गौ आदि पशु हर्षित होते हैं कि निश्चित ही अब हम सबकी अभिवृद्धि होगी ॥११,४.५॥

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन् ।

आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः ॥११,४.६॥

प्राणदेव से अभिषिञ्चित हुई ओषधियाँ, प्राण के साथ वार्तालाप करती हुई कहती हैं कि हे प्राण ! आप हम सबकी आयु की वृद्धि करें तथा सभी को शोभन सुगन्धि से युक्त करें ॥११,४.६॥

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते ।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः ॥११,४.७॥

हे प्राणदेव ! आगमन करते हुए, जाते हुए, कहीं भी स्थित हुए तथा बैठते हुए,(सभी स्थितियों में) आपके प्रति हमारा नमन है ॥११,४.७॥

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते ।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः ॥११,४.८॥

श्री प्राण आणि शरीर छक्ति को प्रेषि ही रोगादि केहे प्राणदेव ! प्राण प्रक्रिया के व्यापार करने वाले तथा अपानन व्यापार करने वाले आपके निमित्त नमन है । परागमन स्वभाव वाले, आगे बढ़ने और पीछे लौटने आदि सभी व्यापारों में आपके प्रति हमारा नमन है ॥११,४.८॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी ।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे ॥११,४.९॥

हे प्राणदेव ! आपका प्रिय जो (प्राणमय) शरीर है, आपकी जो प्रेयसी (जीवनीशक्ति) है तथा अमृतत्त्व से युक्त ओषधि है; वह सब दीर्घ जीवन के लिए हमें प्रदान करें ॥११,४.९॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम् ।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥११,४.१०॥

पुत्र के साथ रहने वाले पिता की तरह, प्रजाओं के साथ प्राण रहते हैं। जो प्राण धारण करने वाले (जंगम प्राणी) हैं तथा जो ऐसे नहीं (वृक्ष- वनस्पति या पत्थर, धातु आदि) हैं, उन सबके ईश्वर (नियन्त्रणकर्ता) प्राण ही हैं॥११,४.१०॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते ।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥११,४.११॥

प्राण हीं मृत्यु (के कारण) हैं, प्राण ही रोगादि (के कारण) हैं। देवशक्तियाँ प्राणों की ही उपासना करती हैं। प्राण ही सत्यनिष्ठ व्यक्ति को श्रेष्ठ लोक में प्रतिष्ठित करता है ॥११,४.११॥

प्राणो विराट्प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्व उपासते ।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥११,४.१२॥

प्राण ही विराट् और सर्वप्रेरक है, अतएव उस प्राण की ही सभी देव उपासना करते हैं। वहीं सर्व उत्पादक सूर्य अमृतमय सोम और प्रजाओं के उत्पत्तिकर्ता प्रजापतिदेव हैं ॥११,४.१२॥

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते ।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते ॥११,४.१३॥

प्राण और अपान ही चावल और जौ के रूप में रहते हैं । प्राणों को ही अनड्वान (भारवाही वृषभ) कहते हैं। जौ में प्राण स्थित है तथा चावलों को अपान कहा गया है ॥११,४.१३॥

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा ।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः ॥११,४.१४॥

जीवात्मा गर्भ में प्राणन और अपानन की क्रिया सम्पन्न करता है । हे प्राण ! आपके द्वारा प्रेरित हुआ प्राणी पृथ्वी पर उत्पन्न होता है ॥११,४.१४॥

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते ।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥११,४.१५॥

प्राण को मातरिश्वा वायु कहा गया है और वायु का नाम ही प्राण है। भूतकाल में, भविष्यकाल में और वर्तमानकाल में जो कुछ भी है, वह सब प्राण में ही प्रतिष्ठित है ॥११,४.१५॥

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत ।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि ॥११,४.१६॥

हे प्राण ! जब आप वृष्टि द्वारा परितृप्त करते हैं, तब महर्षि अथर्वा द्वारा रचित, अंगिरा गोत्रियों और देवताओं द्वारा निर्मित तथा मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की जाने वाली सम्पूर्ण ओषधियाँ प्रकट होती हैं ॥११,४.१६॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम् ।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः ॥११,४.१७॥

जिस समय प्राण वर्षा ऋतु में वृष्टिरूप से विशाल पृथ्वी पर बरसता है, तो इसके अनन्तर ही ओषधियाँ और वनस्पतियाँ प्रादुर्भूत होती हैं ॥११,४.१७॥

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः ।
सर्वे तस्मै बलिं हरान् अमुष्मिंल्लोक उत्तमे ॥११,४.१८॥

हे प्राणदेव ! जो आपके वर्णित माहात्म्य को जानते हैं और जिस ज्ञानी मनुष्य में आप विराजमान होते हैं, उसके निमित्त समस्त देव उत्तमलोक (स्वर्ग) एवं अमरत्व प्रदान करते हैं ॥११,४.१८॥

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः ।
एवा तस्मै बलिं हरान् यस्त्वा शृणवत्सुश्रवः ॥११,४.१९॥

हे प्राण ! सम्पूर्ण प्रजाजन, जिस प्रकार आपके निमित्त बलि (उपभोग योग्य अन्न) लेकर आते हैं; हे श्रेष्ठ यशस्विन् ! उसी प्रकार आपकी महिमा को सुनने वाले विद्वान् के निमित्त भी(वे मनुष्यादि) बलि प्रदान करें ॥११,४.१९॥

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः ।
स भूतो भव्यं भविष्यत्पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः ॥११,४.२०॥

देवशक्तियों में जो प्राण है, वही गर्भ में विचरण करता है । सभी ओर संव्याप्त होकर वही पुन: प्रकट होता है । इस नित्य वर्तमान प्राण ने भूतकाल और भविष्यकाल में उत्पन्न

होने वाली वस्तुओं में, इस प्रकार अपनी शक्तियों से प्रवेश किया है, जिस प्रकार पिता अपने पुत्र में, अपनी शक्तियों के साथ प्रविष्ट होता है ॥११,४.२०॥

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन् ।
यदङ्ग स तमुत्खिदेन् नैवाद्य न श्वः स्यात्।
न रात्री नाहः स्यान् न व्युछेत्कदा चन ॥११,४.२१॥

जल से ऊपर उठता हुआ हंस एक पैर को उठाता नहीं है । हे प्रियजनो ! यदि वह उस पैर को उठा दे, तो यह आज, कल, दिन, रात्रि, प्रकाश और अंधकार कुछ भी शेष नहीं रह जाएगा ॥११,४.२१॥

अष्टाचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्राक्षरं प्र पुरो नि पश्चा ।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः ॥११,४.२२॥

आठ चक्रों वाला एक नेमि-धुरा (प्राण) हजारों अक्षर (अनश्वर) प्रभावों के साथ आगे-पीछे घूमता है ।अपने आधे भाग से वह विश्व के लोकों-पदार्थों की रचना करता है, जो भाग शेष रहता है, वह किसका प्रतीक चिह्न है ॥११,४.२२॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः ।

अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते ॥११,४.२३॥

जो प्राण अनेक जन्मों को धारण करने वाले, चेष्टाशील सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं और दूसरे प्राणियों की देह में शीघ्रतापूर्वक प्रवेश करते हैं, ऐसे हे प्राण ! आपके निमित्त हमारा प्रणाम है ॥११,४.२३॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः ।
अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो मानु तिष्ठतु ॥११,४.२४॥

जो प्राण अनेक रूपों से जन्मने और गतिमान् रहने वाले सम्पूर्ण विश्व का स्वामी हैं, वह wण प्रमादरहित होकर सदैव सभी ओर विचरणशील होते हुए ज्ञानशक्ति से सम्पन्न और असीमित होकर हमारे समीप स्थित रहे॥ ॥११,४.२४॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ्नि पद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥११,४.२५॥

हे प्राण ! प्राणियों की निद्रावस्था में उनके रक्षणार्थ आप जागते रहें, सोएँ नहीं । प्राणियों के सोने पर, इस प्राण के सोने के सम्बन्ध में किसी ने परम्परा क्रम से सुना नहीं है ॥११,४.२५॥

प्राण मा मत्पर्यावृतो न मदन्यो भविष्यसि ।
अपां गर्भमिव जीवसे प्राण बध्नामि त्वा मयि ॥११,४.२६॥

हे प्राण !आप हमसे विमुख न हों और न हमसे दूर अन्यत्र जाएँ । हम आपको अपने अस्तित्व के लिए बाँधते हैं। वैश्वानर अग्नि को जिस प्रकार देह में धारण करते हैं, उसी प्रकार हम अपने शरीर में आपको धारण करते हैं ॥११,४.२६॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ५ – ब्रह्मचर्य सूक्त

ब्रह्मचारी की महिमा का वर्णन, ब्रह्मचारी की पहली समिधा तथा ब्रह्मचारी पहली भिक्षा का वर्णन

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥११,५.१॥

ब्रह्मचारी (ब्रह्म के अनुशासन में आचरणशील) द्युलोक और भूलोक इन दोनों को अपने अनुकूल बनाता हुआ चलता है । देवगण उस (ब्रह्मचारी) में सौमनस्यतापूर्वक निवास करते हैं । इस प्रकार वह पृथ्वी और द्युलोकको अपने तप से धारण करता है तथा आचार्य को परिपूर्ण (तृप्त या सार्थक) बनाता है ॥११,५.१॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे ।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥११,५.२॥

देव, पितर, गन्धर्व और देवगण ये सभी ब्रह्मचारी के पीछे (सहयोगार्थ) चलते हैं। तीन एवं तीस(या तैतीस), तीन सौ और छह हजार इन देवताओं का ब्रह्मचारी ही अपने तप से परितोषण करता है ॥११,५.२॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः
॥११,५.३॥

ब्रह्मचारी को अपने समीप बुलाते हुए (उपनयन संस्कार करके) आचार्य अपने ज्ञानरूपी शरीर के गर्भ में उसे धारण करता है । आचार्य तीन रात्रि तक उसे अपने गर्भ में रखता है। जब (दूसरे आध्यात्मिक जन्म को लेकर) वह बाहर आ जाता है, तो देवगण (दिव्य शक्ति प्रवाह अथवा सत् पुरुष) एकत्रित (उसके सहयोग या अभिनन्दन के लिए होते हैं ॥११,५.३॥

इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति
॥११,५.४॥

ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप द्वारा लोकों का पोषण करता है। उसकी पहली समिधा पृथ्वी है, दूसरी द्युलोक है तथा (तीसरी) अन्तरिक्ष हैं ॥११,५.४॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्
॥११,५.५॥

ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ घोषित होने से पूर्व साधक ब्रह्मचारी (ब्राह्मी अनुशासन का अभ्यासी) होता है । वह ऊर्जा धारण करता हुआ ऊपर उठता (उन्नतिशील होता है, तब ब्राह्मण के रूप में प्रकट होता है और ज्येष्ठ ब्रह्म (परब्रह्म तथा देवगणों का सान्निध्य उसे प्राप्त होता है ॥११,५.५॥

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः ।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥११,५.६॥

(पहले वर्णित ढंग से) समिधाओं को प्रज्वलित करके कृष्णवस्त्र (कृष्णमृग चर्म) धारण करके बढ़े हुए दाढ़ी-मूंछोंयुक्त ब्रह्मचारी पूर्व (पहले वाले) समुद्र (सांसारिक

भण्डार) से उत्तर (श्रेष्ठतर) समुद्र (दिव्य भण्डारों तक पहुँच जाता है ॥११,५.६॥

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥११,५.७॥

अमृत गर्भ में रहकर ब्रह्मचारी, ब्रह्मतेज, श्रेष्ठ लोकों (स्थितियों या क्षेत्रों), प्रजापति (प्रजापालक सामर्थ्य) तथा सर्वश्रेष्ठ स्थिति वाले विराट को उत्पन्न (अपने अन्दर जाग्रत् करता है । तब वह इन्द्र (नियन्ता बनकर) निश्चित रूप से असुरों (आसुरी प्रवाहों) को नष्ट करता है ॥११,५.७॥

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥११,५.८॥

(आचार्य के गर्भ में ब्रह्मचारी को नया जीवन मिलता है। उसका विवरण देते हुए श्रेष कहते हैं-) आचार्य नभ (गर्भाकाश) में दोनों बड़े और गम्भीर पृथ्वी और द्युलोक का सृजन (ब्रह्मचारी के लिए) करते हैं । ब्रह्मचारी अपनी

तपःसाधना से उनकी रक्षा करता है, इसीलिए देवगण उसके साथ सौमनस्यतापूर्वक रहते हैं ॥११,५.८॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च ।
ते कृत्वा समिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥११,५.९॥

सर्वप्रथम ब्रह्मचारी ने भूमि की भिक्षा ग्रहण की, तत्पश्चात् द्युलोक को भी प्राप्त किया। इन दोनों लोकों को समिधा बनाकर उसने अग्नि (ब्रह्मतेज) की उपासना की। इन दोनों के बीच ही उसका संसार स्थित होता है ॥११,५.९॥

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य ।
तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत्केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥११,५.१०॥

ब्राह्मण की सम्पत्ति निकटवर्ती गुहा (अन्तःकरण या अनुभूति) में तथा द्युलोक के आधार से भी परे स्थित है । ब्रह्मचारी उसकी रक्षा तप द्वारा करता है । वह तप उसे निश्चित रूप से ब्रह्मविद् बना देता हैं ॥११,५.१०॥

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे ।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्तान् आ तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥११,५.११॥

इधर (द्युलोक में) एक (तेजस्) है तथा इस पृथ्वी पर दूसरा (तेजस्) है, ये दोनों अन्तरिक्ष में मिलते हैं। उनसे शक्तिशाली किरणें प्रसारित होती हैं। तपःशक्ति से ब्रह्मचारी उन दिव्य संचारों का अधिकारी बनता है ॥११,५.११॥

अभिक्रन्दन् स्तनयन्न् अरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार ।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥११,५.१२॥

बड़ा प्रभावशाली अरुण (भूरे) और काले रंग वाला, गर्जन करने वाला (ब्रह्मचारी मेघ) पृथ्वी को (उत्पादक तत्त्वों से भर देता है। वह पृथ्वी और पर्वतों के समतल स्थानों पर रेतस् (उत्पादक तेज) का सिंचन करता है, जिससे चारों दिशाएँ जीवन्त हो उठती हैं ॥११,५.१२॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमा दधाति ।
तासामर्चींषि पृथगभ्रे चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥११,५.१३॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु और जल में ब्रह्मचारी समिधाओं को अर्पित करता है। उनके तेजस् अलग-अलग रूप से अन्तरिक्ष में निवास करते हैं । उसी से वर्षा, जल, घृत और पुरुष आदि समृद्ध (तेज: सम्पन्न होते हैं ॥११,५.१३॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः ।
जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥११,५.१४॥

आचार्य ही मृत्यु (यम-अनुशासनकर्ता अथवा पूर्व अस्तित्व को समाप्त करने वाले), वरुण (नवसृजक) सोम (आनन्दप्रद प्रवाह), ओषधि (उपचारक) तथा पयः (पोषक रस-दूध) के तुल्य हैं । वही सत्प्रवाह युक्त मेघ हैं। ; क्योंकि उन्होंने ही (साधक में) यह (नया) स्व:(आत्मबोध भर दिया है ॥११,५.१४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणः ।
यद्यदैछत्प्रजापतौ तद्ब्रह्मचारी प्रायछत्स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥११,५.१५॥

प्रजापति की जैसी इच्छा होती है, (तदनुसार) आचार्य वरुण बनकर केवल शुद्ध घृत (सार-तेजस्) उत्पन्न करते हैं। ब्रह्मचारी उसे अपने अधिकार में लेकर अपने मित्रों (समानधर्मियों) को प्रदान करता हैं ॥११,५.१५॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद्वशी ॥११,५.१६॥

ब्रह्मचारी ही आचार्य बनता है और वही प्रजापति (प्रजापालक-रक्षक-शासक) बनता है। ऐसा प्रजापालक ही ब्रह्मानुशासनयुक्त राज्य करता है; विराट् को वश में करने वाला इन्द्र नियन्ता बनता है ॥११,५.१६॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥११,५.१७॥

ब्रह्मचर्य एवं तपः शक्ति से ही शासक राष्ट्र की रक्षा करता है । आचार्य भी ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ब्रह्मचर्य की आस्था वाले (शिष्य की कामना (उनके सृजन का प्रयास करते हैं ॥११,५.१७॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।

अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥११,५.१८॥

ब्रह्मचर्य – संयम साधना से ही कन्या युवापति को प्राप्त करती है। बैल और अश्व आदि भी ब्रह्मचर्य का पालन करके ही भक्षणीय (शक्तिवर्द्धक) घास (आधार) की अभिलाषा रखते हैं ॥११,५.१८॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥११,५.१९॥

ब्रह्मचर्यरूप तषः साधना से सभी देवताओं ने मृत्यु का निवारण किया । ब्रह्मचर्य की सामर्थ्य से ही देवराज इन्द्र अन्य देवताओं को दिव्य तेजस् (अथवा स्वर्ग) देने में समर्थ हुए ॥११,५.१९॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।
संवत्सरः सह ऋतुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥११,५.२०॥

ओषधियाँ, वनस्पतियाँ, ऋतुओं के साथ गमनशील संवत्सर, दिन-रात्रि, भूत और भविष्यत् , ये सभी जन्म से ही ब्रह्मचारी होते हैं ॥११,५.२०॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये ।

अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥११,५.२१॥

पृथ्वी में जन्म लेने वाले प्राणी, आकाश में विचरणशील प्राणी, वन्य पशु, ग्रामीण पशु, पक्षहीन पशु तथा पंखयुक्त पक्षी, ये सभी जन्मजात ब्रह्मचारी होते हैं ॥११,५.२१॥

पृथक्सर्वे प्राजापत्याः प्राणान् आत्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥११,५.२२॥

प्रजापति परमेश्वर से उत्पादित सभी प्राणी अपने अन्दर प्राणशक्ति को भिन्न-भिन्न ढंग से धारण करते हैं। ब्रह्मचारी में अवस्थित ब्रह्म उन (प्राणों) की रक्षा करता है ॥११,५.२२॥

देवानामेतत्परिषूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥११,५.२३॥

देवों का यह सर्वश्रेष्ठ उत्साह उत्पन्न करने वाला (वर्चस्) ज्योतिष्मान् होकर गतिशील होता है । उससे उत्पन्न ब्राह्मण सम्बन्धी ज्येष्ठज्ञान तथा देवगण सब अमृत तत्त्व से युक्त हो गये ॥११,५.२३॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद्बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः ।
प्राणापानौ जनयन्न् आद्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥११,५.२४॥

ब्रह्मचारी प्रकाशमान ब्रह्म (चेतन या ज्ञान) को धारण करता है, इसलिए उसमें सभी देवगण समाहित रहते हैं। वह (ब्रह्मचारी) प्राण, अपान, व्यान, वाणी, मन, ज्ञान तथा मेधाशक्ति को उत्पन्न करता है ॥११,५.२४॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम् ॥११,५.२५॥

(अस्तु, ऐसे ब्रह्मचारी) हममें दृष्टि, श्रवणशक्ति, यश, अन्न, वीर्य, रक्त और उदर (पाचन शक्ति प्रदान करें ॥११,५.२५॥

तानि कल्पन् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥११,५.२६॥

ब्रह्मचारी उपर्युक्त इन सभी के सम्बन्ध में कल्पनाशील होते हुए जल के समीप तपः साधना में संलग्न होता है। इस ज्ञानरूप समुद्र में तपोनिष्ठ होकर, यह ब्रह्मचारी स्नातक हो

जाता है और तब वह अति तेजस्वी होकर, इस भूमण्डल में विशिष्ट आभायुक्त हो जाता है ॥११,५.२६॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ६- पापमोचन सूक्त

अग्नि, वनस्पति, जड़ीबूटी और फसलों की स्तुति, सभी देवों की स्तुति तथा इंद्र और मातलि की प्रशंसा

अग्निं ब्रूमो वनस्पतीन् ओषधीरुत वीरुधः ।
इन्द्रं बृहस्पतिं सूर्यं ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१॥

अग्निदेव, ओषधिसमूह, वनस्पतिसमूह, लंतासमूह, इन्द्र, बृहस्पति और सर्वप्रेरक सूर्यदेव की हम सब स्तुति करते हैं । ये सभी हमें पापकर्मों के प्रभाव से मुक्त करें ॥११,६.१॥

ब्रूमो राजानं वरुणं मित्रं विष्णुमथो भगम् ।
अंशं विवस्वन्तं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.२॥

प्रकाशमान वरुणदेव, मित्रदेव, व्याप्तिशील विष्णु, भजनीय देव, भग, अंशदेव और विवस्वान् नामक सभी देवों की हम स्तुति करते हैं। ये सभी पाप-कृत्यों से हमें विमुक्त करें ॥११,६.२॥

ब्रूमो देवं सवितारं धातारमुत पूषणम् ।
त्वष्टारमग्रियं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.३॥

हम सर्व उत्पादक सवितादेव, धातादेव, पूषादेव और अग्रणी त्वष्टादेव की स्तुति करते हैं, ये हमें पापकर्मों से मुक्त करें ॥११,६.३॥

गन्धर्वाप्सरसो ब्रूमो अश्विना ब्रह्मणस्पतिम् ।
अर्यमा नाम यो देवस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.४॥

गन्धर्वगण, अप्सरागण, अश्विनीकुमारों, वेदों के पति ब्रह्मा और अर्यमा आदि देवों से हम प्रार्थना करते हैं । ये देवगण हमें पाप-कृत्यों से मुक्त करें ॥११,६.४॥

अहोरात्रे इदं ब्रूमः सूर्याचन्द्रमसावुभा ।
विश्वान् आदित्यान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.५॥

दिन-रात्रि, इनके अधिष्ठाता देव सूर्य और चन्द्र तथा अदिति के सब पुत्रों (देव) की हम स्तुति करते हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥११,६.५॥

वातं ब्रूमः पर्जन्यमन्तरिक्षमथो दिशः ।
आशाश्च सर्वा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.६॥

वायुदेव, पर्जन्यदेव, अन्तरिक्ष, दिशाओं और उपदिशाओं की हम वन्दना करते हैं, वे हमें पाप से बचाएँ ॥११,६.६॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादहोरात्रे अथो उषाः ।
सोमो मा देवो मुञ्चतु यमाहुश्चन्द्रमा इति ॥११,६.७॥

दिन, रात्रि और उष:काल के अधिष्ठाता देव, हमें शपथजनित पापों से बचाएँ ज्ञानी लोग जिसे चन्द्रमा कहते हैं, वे सोमदेव भी हमें शपथजनित पापों से बचाएँ ॥११,६.७॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या उत ये मृगाः ।
शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.८॥

पृथ्वी के ऊपर रहने वाले प्राणी, अन्तरिक्ष में रहने वाले पक्षी और जंगल में वास करने वाले मृग आदि पशुओं और शकुन्त पक्षियों से हम प्रार्थना करते हैं, वे सभी हमें पाप-कृत्यों से संरक्षित करें ॥११,६.८॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्च यः ।
इषूर्या एषां संविद्म ता नः सन्तु सदा शिवाः ॥११,६.९॥

भव और शर्वदेव तथा जो पशु संरक्षक रुद्रदेव हैं, उनकी हम स्तुति करते हैं। इन देवों के जिन बाणों को हम जानते हैं, वे हमारे निमित्त सदैव कल्याणकारी हों ॥११,६.९॥

दिवं ब्रूमो नक्षत्राणि भूमिं यक्षाणि पर्वतान् ।
समुद्रा नद्यो वेशन्तास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१०॥

द्युलोक, नक्षत्र, भूमि, यक्ष, पर्वत, सातों समुद्रों, नदियों और जलाशयों की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से संरक्षित करें ॥११,६.१०॥

सप्तऋषीन् वा इदं ब्रूमोऽपो देवीः प्रजापतिम् ।
पितॄन् यमश्रेष्ठान् ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।११,६.११॥

सप्तर्षिगण, जल, प्रजापति ब्रह्मा, पितरगण और उनके अधिपति मृत्यु देवता यम की हम प्रार्थना करते हैं, वे हमें पाप-कृत्यों से रक्षित करें ॥११,६.११॥

ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ।
पृथिव्यां शक्रा ये श्रितास्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१२॥

दिव्यलोक में विद्यमान देव, अन्तरिक्ष मण्डल में स्थित देव तथा भूलोक में जो देवगण हैं, वे हमें दुष्कर्म रूपी पापों से बचाएँ ॥११,६.१२॥

आदित्या रुद्रा वसवो दिवि देवा अथर्वाणः ।
अङ्गिरसो मनीषिणस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१३॥

बारह आदित्यगण, एकादश रुद्रगण, आठ वसुगण, दिव्यलोक के वर्तमान देव, ऋषि अथर्वा, अंगिरा और मनीषीगण सभी हमसे स्तुत होकर, हमें पापों से मुक्त करें ॥११,६.१३॥

यज्ञं ब्रूमो यजमानमृचः सामानि भेषजा ।
यजूंषि होत्रा ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१४॥

हम यज्ञ और यजमान की स्तुति करते हैं । ऋचाओं और सामगान की हम स्तुति करते हैं। ओषधियों और यज्ञकर्ता होता, इन सबकी वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से बचाएँ ॥११,६.१४॥

पञ्च राज्यानि वीरुधां सोमश्रेष्ठानि ब्रूमः ।
दर्भो भङ्गो यवः सहस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१५॥

पत्र, काण्ड, फल-फूल और मूलात्मक पाँच राज्यों (स्थानों) से युक्त ओषधियों में सोमलता सर्वश्रेष्ठ है । दर्भ, भाँग, जौ और धान, ये सभी हमसे स्तुत होकर हमारे दुष्कर्मों को काटने में समर्थ हों ॥११,६.१५॥

अरायान् ब्रूमो रक्षांसि सर्पान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
मृत्यून् एकशतं ब्रूमस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१६॥

यज्ञविरोधी असुरों, सर्पो, पुण्यकर्मियों, पितरगण और एक सौ एक मृत्यु के देवताओं की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से संरक्षित करें ॥११,६.१६॥

ऋतून् ब्रूम ऋतुपतीन् आर्तवान् उत हायनान् ।
समाः संवत्सरान् मासांस्ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१७॥

ऋतुओं, ऋतुओं के अधिपतियों, षड्ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले पदार्थों, संवत्सरों और मासों की हम स्तुति करते हैं, वे हमें पापों से मुक्त करें ॥११,६.१७॥

एत देवा दक्षिणतः पश्चात्प्राञ्च उदेत ।
पुरस्तादुत्तराच्छक्रा विश्वे देवाः समेत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१८॥

हे देवगण ! आप पूर्व – पश्चिम – उत्तर- दक्षिण अपनी-अपनी दिशाओं से शीघ्रतापूर्वक आकर, हमें पा-कृत्यों से बचाएँ ॥११,६.१८॥

विश्वान् देवान् इदं ब्रूमः सत्यसन्धान् ऋतावृधः ।
विश्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.१९॥

हम सत्य के प्रति दृढ़निष्ठ सत्कर्मरूप यज्ञ संवर्द्धक समस्त देवों की , उनकी सहयोगी शक्तियों के साथ वन्दना करते हैं, वे हमें पापों से रक्षित करें ॥११,६.१९॥

सर्वान् देवान् इदं ब्रूमः सत्यसन्धान् ऋतावृधः ।
सर्वाभिः पत्नीभिः सह ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.२०॥

हम सत्यनिष्ठ, यज्ञवर्द्धक देवों की उनकी शक्तियों के साथ स्तुति करते हैं, वे हमारे पापों का शमन करें ॥११,६.२०॥

भूतं ब्रूमो भूतपतिं भूतानामुत यो वशी ।
भूतानि सर्वा संगत्य ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥११,६.२१॥

भूतों को वशीभूत करने वाले, भूतों के अधिपति की हम स्तुति करते हैं, वे सभी हमें पापों से बचाएँ ॥११,६.२१॥

या देवीः पञ्च प्रदिशो ये देवा द्वादश ऋतवः ।
संवत्सरस्य ये दंष्ट्रास्ते नः सन्तु सदा शिवाः ॥११,६.२२॥

दिव्यतायुक्त पाँच दिशाओं, बारह मासों और संवत्सर की दाढ़ों (पक्ष, सप्ताह आदि) की हम स्तुति करते हैं। वे हम सभी के प्रति कल्याणकारी हों ॥११,६.२२॥

यन् मातली रथक्रीतममृतं वेद भेषजम् ।
तदिन्द्रो अप्सु प्रावेशयत्तदापो दत्त भेषजम् ॥११,६.२३॥

(इन्द्र के सारथि) मातलि जिस रथक्रीत (रथ के बदले प्राप्त) अमरता देने वाली ओषधि के ज्ञाता हैं, इन्द्र ने उस ओषधि को जल में प्रविष्ट किया है । हे जलदेव ! आप वह कल्याणकारी औषधि हमें प्रदान करें ॥११,६.२३॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ७- उच्छिष्ट-ब्रह्म-सूक्त

हवन से बचे यज्ञ शेष की प्रशंसा तथा नौ खंडों वाली पृथ्वी

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः ।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥११,७.१॥

(उस विराट् के उच्छिष्ट (छोड़े हुए) में ही नाम और रूप तथा उसी में लोक -लोकान्तर स्थापित हैं। उसके अन्दर ही इन्द्र, अग्नि तथा समस्त विश्व समाहित है ॥११,७.१॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम् ।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः ॥११,७.२॥

उस अवशेष में द्युलोक और पृथ्वी के सभी प्राणी समाहित हैं । जल, समुद्र, चन्द्रमा और वायु ये सभी उसी उच्छिष्ट स्वरूप ब्रह्म में विद्यमान हैं ॥११,७.२॥

सन्न् उच्छिष्टे असंश्चोभौ मृत्युर्वाजः प्रजापतिः ।
लौक्या उच्छिष्ट आयत्ता व्रश्च द्रश्चापि श्रीर्मयि ॥११,७.३॥

सत् (चेतनशील) और असत् (जड़तायुक्त) सृष्टि दोनों, इसी अवशिष्ट में हैं। मृत्यु, सर्जक बल तथा प्रजापति उसी उच्छिष्ट में स्थित हैं। सभी लोक वरुणदेव और अमृतमय सोम इसी में समाहित हैं। हममें श्री- शोभा उसी के कारण स्थित है ॥११,७.३॥

दृढो दृंह स्थिरो न्यो ब्रह्म विश्वसृजो दश ।
नाभिमिव सर्वतश्चक्रमुच्छिष्टे देवताः श्रिताः ॥११,७.४॥

सुदृढ़ (लोकादि), दृढ़ एवं स्थिर (जड़ पदार्थ), गतिमान् प्राणी, अव्यक्त ब्रह्म, विश्व की उत्पत्ति करने वाली दस देव शक्तियाँ नाभि के आश्रित चक्र की तरह उच्छिष्ट के आश्रित हैं ॥११,७.४॥

ऋक्साम यजुरुच्छिष्ट उद्गीथः प्रस्तुतं स्तुतम् ।
हिङ्कार उच्छिष्टे स्वरः साम्नो मेऽश्च तन् मयि ॥११,७.५॥

ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, उद्गीथ, स्तुति और स्तवन, ये सभी उच्छिष्ट में स्थित हैं। हिंकार, स्वर और सामगान के गायन, ये सभी यज्ञीय अवशिष्ट में ही निहित हैं । ये सभी हमारे अन्दर स्थित रहें ॥११,७.५॥

ऐन्द्राग्नं पावमानं महानाम्नीर्महाव्रतम् ।
उच्छिष्टे यज्ञस्याङ्गान्यन्तर्गर्भ इव मातरि ॥११,७.६॥

इन्द्राग्नि की स्तुति वाले सूक्त, पवमान सोम के सूक्त, पावमान एवं महानाम्नी ऋचाएँ, महावतशील यज्ञीय मंत्र भाग, ये सभी उसी प्रकार उच्छिष्ट में विद्यमान हैं, जिस प्रकार माता के गर्भ में जीव रहता है ॥११,७.६॥

राजसूयं वाजपेयमग्निष्टोमष्तदध्वरः ।
अर्काश्वमेधावुच्छिष्टे जीवबर्हिर्मदिन्तमः ॥११,७.७॥

राजसूय, वाजपेय, अग्निष्टोम, अध्वर, अर्क, अश्वमेध और आनन्दप्रद जीवन रक्षक यज्ञ, ये सभी प्रकार के यज्ञ उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥११,७.७॥

अग्न्याधेयमथो दीक्षा कामप्रश्छन्दसा सह ।
उत्सन्ना यज्ञाः सत्राण्युच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥११,७.८॥

अग्न्याधान, दीक्षा, छन्द से कामनाओं की पूर्ति करने वाला यज्ञ, उत्सन्न यज्ञ और सोमयागात्मक यज्ञ, ये सभी उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥११,७.८॥

अग्निहोत्रं च श्रद्धा च वषट्कारो व्रतं तपः ।

दक्षिणेष्टं पूर्तं चोच्छिष्टेऽधि समाहिताः ॥११,७.९॥

अग्निहोत्र, श्रद्धा, वषट्कार, व्रत, तप, दक्षिणा एवं अभीष्टपूर्ति, ये सभी उस उच्छिष्ट में विद्यमान हैं ॥११,७.९॥

एकरात्रो द्विरात्रः सद्यःक्रीः प्रक्रीरुक्थ्यः ।
ओतं निहितमुच्छिष्टे यज्ञस्याणूनि विद्यया ॥११,७.१०॥

एकरात्र, द्विरात्र, सोफ्याम, सद्य क्री एवं प्रक्री (एक दिन में सम्पन्न होने वाले सोम यज्ञ) उक्थ्य (उक्थ गान के साथ होने वाले याग, ये सभी यज्ञ तथा यज्ञ के शेष अंश ब्रह्मविद्या के साथ उच्छिष्ट में ही आश्रयीभूत हैं ॥११,७.१०॥

चतूरात्रः पञ्चरात्रः षड्रात्रश्चोभयः सह ।
षोडशी सप्तरात्रश्चोच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे ये यज्ञा अमृते हिताः ॥११,७.११॥

चतुरात्र, पंचरात्र, घड्रात्र और इनके दो गुना दिनों वाले (अर्थात् अष्टात्र, दशरात्र, द्वादशरात्र), सोलह तथा सप्तरात्र ये सभी यज्ञ उच्छिष्ट द्वारा ही विनिर्मित हैं। ये सभी अमृतमय फल प्रदान करने वाले हैं ॥११,७.११॥

प्रतीहारो निधनं विश्वजिच्चाभिजिच्च यः ।

साह्नातिरात्रावुच्छिष्टे द्वादशाहोऽपि तन् मयि ॥११,७.१२॥

प्रतिहार, निधन, विश्वजित्, अभिजित्, साह्न, अतिरात्र, द्वादशाह, ये सभी यज्ञ उच्छिष्टरूपी ब्राह्मी चेतना से युक्त हैं। ये सभी हमारे अन्दर स्थित हों ॥११,७.१२॥

सूनृता संनतिः क्षेमः स्वधोर्जामृतं सहः ।
उच्छिष्टे सर्वे प्रत्यञ्चः कामाः कामेन तातृपुः ॥११,७.१३॥

सत्यनिष्ठ वाणी, विनम्रभाव, कल्याण, पितरगणों को तृप्ति देने वाले स्वधा, बलप्रद अन्न, अमरत्व प्रदाता अमृत (पीयूष), पराक्रमयुक्त शक्ति, ये सभी अभीष्ट काम यज्ञ, अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं, जो उच्छिष्ट में ही विद्यमान हैं ॥११,७.१३॥

नव भूमीः समुद्रा उच्छिष्टेऽधि श्रिता दिवः ।
सूर्यो भात्युच्छिष्टेऽहोरात्रे अपि तन् मयि ॥११,७.१४॥

नौ खण्डों वाली भूमि, सात समुद्र, दिव्यलोक, सूर्यदेव और दिन-रात्रि भी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं। यह सम्पूर्ण ज्ञान हमारे अन्दर स्थित हो ॥११,७.१४॥

उपहव्यं विषूवन्तं ये च यज्ञा गुहा हिताः ।

बिभर्ति भर्ता विश्वस्योच्छिष्टो जनितुः पिता ॥११,७.१५॥

उपहव्य, विधूवान् और गुहा में आश्रित (अज्ञात) जो यज्ञ है, उन्हें विश्व पोषक और पिता के भी उत्पन्नकर्ता उच्छिष्ट ही धारण करने वाले हैं ॥११,७.१५॥

पिता जनितुरुच्छिष्टोऽसोः पौत्रः पितामहः ।
स क्षियति विश्वस्येशानो वृषा भूम्यामतिघ्न्यः ॥११,७.१६॥

उच्छिष्ट, उत्पन्नकर्ता का भी परमपिता है, प्राण का पौत्र भी है और पितामह भी है। वह विश्व का नियन्ता होकर सर्वव्यापक है, सर्व समर्थ और पृथ्वी में सर्वोत्तम है ॥११,७.१६॥

ऋतं सत्यं तपो राष्ट्रं श्रमो धर्मश्च कर्म च ।
भूतं भविष्यदुच्छिष्टे वीर्यं लक्ष्मीर्बलं बले ॥११,७.१७॥

ऋत, सत्य, तप, राष्ट्र, श्रमशीलता, क्रियाशीलता, भूत (उत्पादित विश्व), उत्पादित होने वाला भविष्यत्, वीर्य (पराक्रम शक्ति), श्री – सम्पदा और बल, ये सभी उच्छिष्ट के ही आश्रित हैं ॥११,७.१७॥

समृद्धिरोज आकूतिः क्षत्रं राष्ट्रं षडुर्व्यः ।

संवत्सरोऽध्युच्छिष्ट इडा प्रैषा ग्रहा हविः ॥११,७.१८॥

भौतिक समृद्धि, शारीरिक ओज, संकल्प बल, क्षात्रतेज, क्षात्र धर्म से संरक्षण योग्य राष्ट्र, छह भूमियाँ, संवत्सर, इडा (अन्न) देव, ऋत्विजों के कर्मप्रेरक मंत्र प्रैष, ग्रह, चरु से युक्त हवि, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) में ही स्थित हैं ॥११,७.१८॥

चतुर्होतार आप्रियश्चातुर्मास्यानि नीविदः ।
उच्छिष्टे यज्ञा होत्राः पशुबन्धास्तदिष्टयः ॥११,७.१९॥

चतुहता, आप्रिय, चातुर्मास्य, स्तोता की गुणवत्ता को प्रकट करने वाले मंत्र निविद्, यज्ञ होग(सप्त वषट्कर्ता, पशुबन्ध और उसकी इष्टियाँ उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥११,७.१९॥

अर्धमासाश्च मासाश्चार्तवा ऋतुभिः सह ।
उच्छिष्टे घोषिणीराप स्तनयित्नुः श्रुतिर्महो ॥११,७.२०॥

अर्घमास(पक्षी, मास, ऋतुओं के साथ ऋतु-पदार्थ, घोषयुक्त जल, गर्जना करते हुए मेघ और पवित्र भू-मण्डल, ये सभी उच्छिष्ट में ही समाहित हैं ॥११,७.२०॥

शर्कराः सिकता अश्मान ओषधयो वीरुधस्तृणा ।
अभ्राणि विद्युतो वर्षमुच्छिष्टे संश्रिता श्रिता ॥११,७.२१॥

पथरीली बालू, रेत, पत्थर, ओषधियाँ, वनस्पतियाँ और घास, जलपूर्ण बादल, विद्युत् तथा वृष्टि ये सभी उच्छिष्ट रूप ब्रह्म में ही आश्रित हैं ॥११,७.२१॥

राद्धिः प्राप्तिः समाप्तिर्व्याप्तिर्मह एधतुः ।
अत्याप्तिरुच्छिष्टे भूतिश्चाहिता निहिता हिता ॥११,७.२२॥

पूर्ण सिद्धि, इष्टफल की प्राप्ति, सम्यक् प्राप्ति-समाप्ति, अनेक प्रकार के पदार्थों की प्राप्ति- व्याप्ति, तेजस्विता, अभिवृद्धि -समृद्धि, अत्यधिक प्राप्ति और ऐश्वर्यशीलता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म में ही आश्रययुक्त हैं ॥११,७.२२॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥११,७.२३॥

प्राण धारण करने वाले (प्राणी), जो नेत्रों से देखने वाले हैं, ये सभी उच्छिष्ट से निर्मित हैं । जो देव शक्तियाँ दिव्यलोक (स्वर्गलोक) में विद्यमान हैं, वे सभी उच्छिष्ट में ही सन्निहित हैं ॥११,७.२३॥

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥११,७.२४॥

यजु, ऋक्, साम, छन्द (अथर्व) आदि वेद द्युलोक तथा स्वर्गस्थ सभी देवता उच्छिष्ट यज्ञ में ही स्थित हैं॥ ॥११,७.२४॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥११,७.२५॥

प्राण, अपान, श्रोत्र, चक्षु, भौतिक और अक्षय – चेतनशील तथा दिव्यलोक के देवगण, ये सभी उच्छिष्ट (परब्रह्म) से ही प्रादुर्भूत हैं ॥११,७.२५॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥११,७.२६॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, प्रत्यक्षीभूत आनन्द और स्वर्गीय देवगण, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हुए हैं॥११,७.२६॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥११,७.२७॥

देवगण, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सराएँ और देवता, ये सभी उच्छिष्ट ब्रह्म से ही उत्पादित हैं ॥११,७.२७॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ८ – अध्यात्म सूक्त

सृष्टि की रचना प्रलय काल के महासागर में तप और कर्म इंद्र, अग्नि, सोम, त्वष्टा की उत्पत्ति, ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेंद्रियों का विषय तथा परमेश्वर और माया

यन् मन्युर्जायामावहत्संकल्पस्य गृहादधि ।
क आसं जन्याः के वराः क उ ज्येष्ठवरोऽभवत्॥११.८.१॥

जिस समय मन्यु (आत्म स्फूर्ति, उत्साह) ने संकल्पबल के गृह (स्रोत) से अपनी संकल्पशक्ति रूपी स्त्री को प्राप्त किया, उस समय कन्यापक्ष के लोग कौन थे ? वर पक्ष के लोग कौन थे? उनमें किसे श्रेष्ठ वर की संज्ञा से विभूषित किया गया था? ॥११.८.१॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
त आसं जन्यास्ते वरा ब्रह्म ज्येष्ठवरोऽभवत्॥११.८.२॥

अर्णव (सृष्टि से पूर्व सृष्टि के मूल सक्रिय तत्त्व के महासागर) के बीच तप और कर्म ये दो पक्ष थे, वे ही वर पक्षीय और

कन्या पक्षीय लोग थे तथा ब्रह्म ही उस समय सर्वश्रेष्ठ वर थे ॥११.८.२॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा ।
यो वै तान् विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत्॥११.८.३॥

अधिष्ठाता देवों से दस देवता उत्पन्न हुए (उनका वर्णन अगले मंत्र में है) । जिस साधक ने प्रत्यक्ष रूप में इनका निश्चित ही साक्षात्कार किया, वहीं ज्ञानी मनुष्य देश, काल आदि से रहित विराट् ब्रह्मज्ञानको कहने में समर्थ है ॥११.८.३॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥११.८.४॥

प्राण, अपान, नेत्र, श्रवणेन्द्रिय, क्षीणता रहित-ज्ञानशक्ति, क्षीणतायुक्त भौतिक शक्ति, व्यान (अन्नरस को संचारित करने वाली वृत्ति), उदान (ऊपरी उद्गार, व्यापार को चलाने वाली प्रक्रिया), वाणी और मस्तिष्क, ये दस प्राण निश्चित ही संकल्पशक्ति को धारण करते हैं ॥११.८.४॥

अजाता आसन्न् ऋतवोऽथो धाता बृहस्पतिः ।
इन्द्राग्नी अश्विना तर्हि कं ते ज्येष्ठमुपासत ॥११.८.५॥

ऋतुएँ, धाता, बृहस्पतिदेव, देवराज इन्द्र, अग्निदेव और अश्विनीकुमार ये सभी देव जब उत्पन्न नहीं हुए थे, ऐसी अवस्था में इन देवों ने (अपनी उत्पत्ति के लिए किस श्रेष्ठ की उपासना की थी ? ॥११.८.५॥

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।
तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत्ते ज्येष्ठमुपासत ॥११.८.६॥

ज्ञानयुक्त तप और फलरूप कर्म ही विशाल समुद्र में विद्यमान थे। कर्मशक्ति से तप की उत्पत्ति हुई, इसलिए वे धाता आदि देव अपनी उत्पत्ति के लिए उसी की उपासना करते हैं ॥११.८.६॥

येत आसीद्भूमिः पूर्वा यामद्धातय इद्विदुः ।
यो वै तां विद्यान् नामथा स मन्येत पुराणवित्॥११.८.७॥

वर्तमान भूमि (पृथ्वी या काया) से पूर्व की (बीते हुए जीवन या कल्प) की जो भूमि थी, उसे तप के प्रभाव से सर्वज्ञ महर्षियों ने जान लिया था। अतीतकालीन भूमि को जो पृथक्-पृथक् नाम से जानते हैं, वही पुराण (पुरातन) के जानने वाले कहे जाते हैं ॥११.८.७॥

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निरजायत ।

कुतस्त्वष्टा समभवत्कुतो धाताजायत ॥११.८.८॥

उस (सृष्टि सृजन के समय में इन्द्र, अग्नि, सोम, त्वष्टा और धातादेव आदि किससे उत्पन्न हुए ॥११.८.८॥

इन्द्रादिन्द्रः सोमात्सोमो अग्नेरग्निरजायत ।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुर्धातुर्धाताजायत ॥११.८.९॥

(उस समय इन्द्र से इन्द्र, सोम से सोम, अग्नि से अग्नि, त्वष्टा से त्वष्टा तथा धाता से धाता की उत्पत्ति हुई ॥११.८.९॥

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते ॥११.८.१०॥

जिन अग्नि आदि अधिष्ठाता देवों से पूर्वोक्त प्राण, अपान आदि दस देवगण उत्पन्न हुए, वे (देवगण) अपने पुत्रों को स्थान देकर किस लोक में आश्रयीभूत हुए? ॥११.८.१०॥

यदा केशान् अस्थि स्नाव मांसं मज्जानमाभरत्।
शरीरं कृत्वा पादवत्कं लोकमनु प्राविशत्॥११.८.११॥

सृष्टि-रचना काल में स्रष्टा ने जब बाल, अस्थि, नसों, मांस और मज्जा को एकत्र किया, तो उनसे हाथ-पैर आदि

शारीरिक अंगों की रचना करके किस लोक में अनुकूलता के साथ प्रवेश किया ? ॥११.८.११॥

कुतः केशान् कुतः स्नाव कुतो अस्थीन्याभरत्।
अङ्गा पर्वाणि मज्जानं को मांसं कुत आभरत्॥११.८.१२॥

उस स्रष्टा ने किस किस उपकरण से केशों, किससे स्नायु भाग, कहाँ से अस्थियों को परिपूर्ण किया ? कहाँ से शारीरिक अंग-अवयवों, पोरों और मांस, मज्जा को एकत्रित किया ? ऐसा कह पाने में कौन समर्थ है? ॥११.८.१२॥

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥११.८.१३॥

वे देवगण सींचने वाले (संसिच) इस नाम से युक्त हैं। वे देव मरणधर्मा शरीर को रक्त से गीला करके उसे पुरुष आकृति रूप बनाकर उसमें प्रविष्ट हुए ॥११.८.१३॥

ऊरू पादावष्ठीवन्तौ शिरो हस्तावथो मुखम् ।
पृष्टीर्बर्जह्ये पार्श्वे कस्तत्समदधादृषिः ॥११.८.१४॥

किस अष ने जंघाओं, घुटनों, पैरों, सिर, हाथ, मुख, पीठ, हँसली और पसलियों आदि सभी अंगों को आपस में मिलाया ? ॥११.८.१४॥

शिरो हस्तावथो मुखं जिह्वां ग्रीवाश्च कीकसाः ।
त्वचा प्रावृत्य सर्वं तत्संधा समदधान् मही ॥११.८.१५॥

सिर, हाथ, मुख, जीभ, कण्ठ और अस्थियों आदि सभी पर चर्म के आवरण को चढ़ाकर देवों ने अपने-अपने कर्म में संलग्न किया ॥११.८.१५॥

यत्तच्छरीरमशयत्संधया संहितं महत्।
येनेदमद्य रोचते को अस्मिन् वर्णमाभरत्॥११.८.१६॥

जो यह विशाल शरीर है, संधाता (जोड़ने वाला) देव द्वारा जिसके अवयव जोड़े गये हैं, वह शरीर जिस वर्ण (प्रकृति या रंग) से प्रकाशित है, किस देव ने इस शरीर में वर्ण की स्थापना की ? ॥११.८.१६॥

सर्वे देवा उपाशिक्षन् तदजानाद्वधूः सती ।
ईशा वशस्य या जाया सास्मिन् वर्णमाभरत्॥११.८.१७॥

देवों ने शिक्षा (प्रतिभा प्रदान की । स्थिर (धर्म पर स्थिर) वधू (सर्जक शक्ति ने उसे समझ लिया ।सबको वश में रखकर शासन चलाने वाली उस जाया (जन्मदात्री) ने (अंगों में) वर्णो (प्रवृत्तियों) को भर दिया ॥११.८.१७॥

यदा त्वष्टा व्यतृणत्पिता त्वष्टुर्य उत्तरः ।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥११.८.१८॥

जगत् के उत्पादक जो श्रेष्ठ आदिदेव त्वष्टा हैं, उन्होंने जब नेत्र, कान आदि छिद्रों की रचना की, उस समय मनुष्य देह को घर बनाकर प्राण, अपान और इन्द्रिय आदि देवों ने उसमें प्रवेश किया ॥११.८.१८॥

स्वप्नो वै तन्द्रीर्निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालत्यं पालित्यं शरीरमनु प्राविशन् ॥११.८.१९॥

स्वप्न, निद्रा, आलस्य, निति आदि पापमूलक देवों ने वृद्धावस्था में क्षरण करने वाले खालित्य, बाल सफेद करने वाले पलितत्व आदि सहित शरीर में प्रवेश किया ॥११.८.१९॥

स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत्।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥११.८.२०॥

चोरी, दुराचार, कुटिलता, सत्य, यज्ञ, महान् कीर्ति, बल, क्षात्रतेज और सामर्थ्य शक्ति ये सभी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥११.८.२०॥

भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वास्तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥११.८.२१॥

ऐश्वर्य, दरिद्रता, दानवृत्ति, कंजूसी, भूख और सभी प्रकार की तृष्णा, ये सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए॥११.८.२१॥

निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥११.८.२२॥

निन्दा, स्तुति, आनन्दप्रद वस्तु, आनन्दरहित शोक, श्रद्धा, ध-समृद्धि रूप दक्षिणा (दक्षता) , अश्रद्धा आदि भी मनुष्य देह में प्रवेश कर गये ॥२२॥

विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥११.८.२३॥

विद्या (आत्मविद्या) एवं अविद्या (भौतिक विद्या) तथा अन्य जो उपदेश करने योग्य शब्द हैं, साथ ही ऋक्, साम, यजुर्वेद आदि सभी इस मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥११.८.२३॥

आनन्दा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥११.८.२४॥

आनन्द, मोद, प्रमोद, हास्य विनोद, हास्य चेष्टा और नर्तन आदि ये भी मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए ॥११.८.२४॥

आलापाश्च प्रलापाश्चाभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्न् आयुजः प्रयुजो युजः ॥११.८.२५॥

सार्थक कथन (आलाप), निरर्थक कथन (प्रलाप) और वार्तालाप इन सभी ने मनुष्य में प्रवेश किया । आयोजन, प्रयोजन और योजन भी मनुष्य शरीर में प्रविष्ट हुए ॥११.८.२५॥

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥११.८.२६॥

प्राण, अपान, चक्षु, कान, जड़- चेतनशक्ति, व्यान, उदान, वाणी और मन ये सभी मनुष्य देह में प्रविष्ट होकर उसके साथ अपने-अपने कार्यों में संलग्न होते हैं ॥११.८.२६॥

आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥११.८.२७॥

प्रार्थना रूप आशीष, घोषणा- प्रशासन, संमति, विशेष अनुशासन, मन बुद्धि, चित्त और अहंकार की समस्त वृत्तियों ने मानव देह में प्रवेश किया ॥११.८.२७॥

आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥११.८.२८॥

स्नान में प्रयुक्त (स्वच्छ करने वाला) जल, सान (पेय रूप) जल, प्राण को स्थिरता देने वाला जल, शीघ्रगामी जल, अल्प जल, गुहा स्थित जल, शुक्ररूपी जल, स्थूल जल तथा वीभत्स भाव (ये सभी प्रकार के रस एवं भाव प्रवाह) शरीर में प्रविष्ट हुए ॥११.८.२८॥

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥११.८.२९॥

अस्थियों को समिधा रूप (आधार) बनाकर आठ प्रकार के जल ने शरीर की आकृति को गढ़ा और वीर्य को घृत रूप में प्रयुक्त करके देवों ने मनुष्य देह में प्रवेश किया ॥११.८.२९॥

या आपो याश्च देवता या विराड्ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशच्छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३०॥

यह जल, देवगण को विराट् ब्रह्म के साथ (अव्यक्त रूप में रहते हैं, वे सभी ब्रह्मतेज के साथ मनुष्य देह में प्रविष्ट हुए। ब्रह्म भी शरीर में प्रविष्ट हुआ और वही प्रजापति (स्वामी) रूप में स्थित रहता है ॥११.८.३०॥

सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य वि भेजिरे ।
अथास्येतरमात्मानं देवाः प्रायच्छन् अग्नये ॥११.८.३१॥

सूर्यदेव ने आँख को, वायुदेव ने घ्राणेन्द्रिय को अपने भाग रूप में स्वीकार किया, इसके अतिरिक्त छह कोशयुक्त शरीर को सभी देवगणों ने अग्नि को भागरूप में प्रदान किया ॥११.८.३१॥

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥११.८.३२॥

इस प्रकार इन सभी बातों का ज्ञाता विद्वान् मनुष्य शरीर को "यह ब्रह्म स्वरूप है" ऐसा मानता है; क्योंकि इसमें सभी देव शक्तियाँ उसी प्रकार वास करती हैं, जिस प्रकार गोशाला में गौएँ निवास करती हैं ॥११.८.३२॥

प्रथमेन प्रमारेण त्रेधा विष्वङ्वि गछति ।
अद एकेन गछत्यद एकेन गछतीहैकेन नि षेवते ॥११.८.३३॥

(यह जीवात्मा) मृत्यु के क्रम में एक प्रकार के (श्रेष्ठ) कर्म से (उच्च लोकों में जाता है, एक प्रकार के (हीन) कर्म से (निम्न लोकों में) जाता है तथा एक प्रकार के कर्म से (पुनः इस विश्व का) सेवन (भोग) करता है ॥११.८.३३॥

अप्सु स्तीमासु वृद्धासु शरीरमन्तरा हितम् ।
तस्मिं छवोऽध्यन्तरा तस्माच्छवोऽध्युच्यते ॥११.८.३४॥

पोषक अप् (जल) प्रवाह (अन्तरिक्ष अथवा गर्भ) के बीच यह शरीर बढ़ता है, इसलिए इसे शव (बढ़ने वाला) कहते हैं। उसके अन्दर स्थापित उस (बढ़ाने वाले) आत्मतत्त्व को 'शव' कहते हैं ॥११.८.३४॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त ९ – शत्रुनिवारण सूक्त

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च ।
असीन् परशून् आयुधं चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥११.९.१॥

हे अर्बुदै ! ये जो आपके (विशाल) बाहु हैं, बाण- धनुषों के पराक्रम हैं, तलवारें, परशु आदि आयुध तथा हृदय के संकल्प हैं, उन्हें अमित्रों (शत्रुओं) द्वारा देखे जाने योग्य स्थिति में लाएँ, उत्-आरानों को भी दिखाएँ ॥११.९.१॥

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं मित्रा देवजना यूयम् ।
संदृष्टा गुप्ता वः सन्तु या नो मित्राण्यर्बुदे ॥११.९.२॥

हे मित्र देव ! आप उठे और युद्ध के लिए तत्पर हों । हे शत्रुनाशक अर्बुदे ! जो हमारे मित्र हैं, उन्हें आप भली प्रकार सुरक्षित रखें । आपके द्वारा हमारे सभी वीर सैनिक संरक्षणयुक्त हों ॥११.९.२॥

उत्तिष्ठतमा रभेतामादानसंदानाभ्याम् ।

अमित्राणां सेना अभि धत्तमर्बुदे ॥११.९.३॥

हे अर्बुदे ! आप अपने स्थान से उठे और अपना कार्य प्रारम्भ करें । 'आदान' और 'संदान' विधियों या उपकरणों से शत्रु सेनाओं को वशीभूत करें ॥११.९.३॥

अर्बुदिर्नाम यो देव ईशानश्च न्यर्बुदिः ।
याभ्यामन्तरिक्षमावृतमियं च पृथिवी मही ।
ताभ्यामिन्द्रमेदिभ्यामहं जितमन्वेमि सेनया ॥११.९.४॥

जो अर्बुदि और न्यर्बुदि नाम से प्रसिद्ध देव हैं, जिन्होंने अन्तरिक्ष और भूमण्डल को आवृत कर रखा है, ऐसे इन्द्र के स्नेही (अर्बुदि और न्यबुदि) विजय दिलाने वाले हैं, ऐसी हमारी मान्यता है ॥११.९.४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
भञ्जन्न् अमित्राणां सेनां भोगेभिः परि वारय ॥११.९.५॥

हे देव समुदाय वाले अर्बुदे ! आप अपनी सैन्य शक्ति के साथ उठें और शत्रुओं की शक्ति खण्डित करते हुए, उन्हें चारों ओर से घेर लें या दूर हटा दें ॥११.९.५॥

सप्त जातान् न्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन् ।

तेभिष्ट्वमाज्ये हुते सर्वैरुत्तिष्ठ सेनया ॥११.९.६॥

हे न्यर्बुदे ! ऊपर के सात प्रकार के अस्त्रों की समीक्षा करते हुए घृताहुति दिये जाने के साथ ही अपनी सैन्यशक्ति सहित उठ खड़े हों ॥११.९.६॥

प्रतिघ्नानाश्रुमुखी कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
विकेशी पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.७॥

हे अर्बुदे ! आपके प्रहार से पुरुष या पौरुष नष्ट हो जाने पर शत्रु शक्तियाँ श्री- हीन, अस्त-व्यस्त तथा अश्रुमुखी होकर आक्रोश से भर उठे ॥११.९.७॥

संकर्षन्ती करूकरं मनसा पुत्रमिछन्ती ।
पतिं भ्रातरमात्स्वान् रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.८॥

हे अर्बुदे ! आपके आक्रमण से वह (शत्रु शक्ति) करूकर (कार्यतन्त्र) को समेट कर अपने पुत्र, भाई- बन्धुओं (कुटुम्बियों) के हित (सुरक्षा) की कामना करें ॥११.९.८॥

अलिक्लवा जाष्कमदा गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ।
ध्वाङ्क्षाः शकुनयस्तृप्यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.९॥

हे शत्रुनाशक अर्बुदे ! आपके प्रहार से शत्रुओं के नष्ट हो जाने पर भयंकर विशाल मांसभक्षी पक्षी गोध, बाज और कौवे आदि उनको खाकर परितृप्त हों । इसे आप देखते रहें ॥११.९.९॥

अथो सर्वं श्वापदं मक्षिका तृप्यतु क्रिमिः ।
पौरुषेयेऽधि कुणपे रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.१०॥

हे शत्रुसंहारक अर्बुदै ! आपके द्वारा नष्ट किये जाने पर गीदड़, व्याघ, मक्खी और मांस के छोटे कृमि- ये सभी शत्रुओं के शवों का भक्षण करके परितृप्त हों ॥११.९.१०॥

आ गृह्णीतं सं बृहतं प्राणापानान् न्यर्बुदे ।
निवाशा घोषाः सं यन्त्वमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.११॥

हे अर्बुदि और न्यबुदि नामक वीरो ! आप दोनों शत्रुओं के प्राणों को ग्रहण करें और उन्हें समूल विनष्ट करें । जिससे उनमें कोलाहल-हाहाकार मचने लगे ॥११.९.११॥

उद्वेपय सं विजन्तां भियामित्रान्त्सं सृज ।
उरुग्राहैर्बाह्वङ्कैर्विध्यामित्रान् न्यर्बुदे ॥११.९.१२॥

हे न्यर्बुदे ! आप हमारे शत्रुओं को भयभीत करें, शत्रु भयाक्रान्त होकर पलायन करने लगें । वे भयभीत हों, तत्पश्चात् आप हमारे शत्रुओं को हाथों और पैरों की क्रिया से रहित करके प्रताड़ित करें ॥११.९.१२॥

मुह्यन्त्वेषां बाहवश्चित्ताकूतं च यद्धृदि ।
मैषामुच्छेषि किं चन रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.१३॥

हे शत्रु संहारक अर्बुदै ! आपके द्वारा प्रताड़ित शत्रुओं की भुजाएँ शिथिल हो जाएँ, हृदय के संकल्प भी विस्मृत हो जाएँ, इन शत्रुओं के रथ, हाथी, अश्वादि कुछ भी सुरक्षित न रह सकें ॥११.९.१३॥

प्रतिघ्नानाः सं धावन्तूरः पटौरावाघ्नानाः ।
अघारिणीर्विकेश्यो रुदत्यः पुरुषे हते रदिते अर्बुदे तव ॥१४॥

हे शत्रु विनाशक अर्बुदै ! आपके प्रहार से पुरुषों या पुरुषत्व का नाश होने पर शत्रु शक्तियाँ, आधारहीन, बिखरे केशवाली अस्तव्यस्त होकर छाती पीटती हुई रोती-भागती फिरें ॥१४॥

श्वन्वतीरप्सरसो रूपका उतार्बुदे ।
अन्तःपात्रे रेरिहतीं रिशां दुर्णिहितैषिणीम् ।
सर्वास्ता अर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥११.९.१५॥

हे अर्बुदे ! आप श्ववती (फूलने वाले) रूपवाली अप्सराओं, अन्त: पात्र (अन्त:करण) को उत्तेजित करने वाली पीड़ा, मायारूपी सेनाओं, ऊर्ध्व अस्त्रों और भयंकर दैत्यों को, शत्रुओं को दिखाएँ ॥११.९.१५॥

खडूरेऽधिचङ्क्रमां खर्विकां खर्ववासिनीम् ।
य उदारा अन्तर्हिता गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
सर्पा इतरजना रक्षांसि ॥११.९.१६॥

अन्तरिक्ष में भ्रमणशील छोटे से छोटे स्थान पर रहने वाली हिंसक पक्षिका को दिखाएँ, जो ऊपर स्थित उत्पीड़क गुह्य अस्त्रों का प्रयोग करे। अपनी माया से दृष्टिगोचर न होने वाले गंधर्व, अप्सरा, सर्प, राक्षस हैं; उन्हेंआप पराजित करने हेतु शत्रुओं को दिखाएँ ॥११.९.१६॥

चतुर्दंष्ट्रां छ्यावदतः कुम्भमुष्कामसृङ्मुखान् ।
स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥११.९.१७॥

चार दाढ़ों से युक्त, काले दाँतों वाले, घड़े के समान अण्डकोशों वाले, रक्त से संलिप्त मुख वाले, भयभीत होने वाले और भयभीत करने वाले इन सभी को शत्रुओं को दिखाकर भयाक्रान्त करें ॥११.९.१७॥

उद्वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः ।
जयंश्च जिष्णुश्चामित्रां जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥११.९.१८॥

हे अर्बुदे ! आप शत्रुओं की सेनाओं को शोकाकुल करके कम्पायमान करें। आप दोनों विजयशील इन्द्रदेव के मित्ररूप हैं, अतएव हमारे वैरियों को पराजित करते हुए, हमें विजयी बनाएँ ॥११.९.१८॥

प्रब्लीनो मृदितः शयां हतोऽमित्रो न्यर्बुदे ।
अग्निजिह्वा धूमशिखा जयन्तीर्यन्तु सेनया ॥११.९.१९॥

हे न्यर्बुदे ! हमारा शत्रु घेरे जाकर, मसले जाकर सो जाए और यज्ञीय धूम्र शिखा तथा अग्निज्वालाएँ शत्रुओं की सेनाओं को जीतती हुई, हमारी सेना के साथ प्रस्थान करें ॥११.९.१९॥

तयार्बुदे प्रणुत्तानामिन्द्रो हन्तु वरंवरम् ।
अमित्राणां शचीपतिर्मामीषां मोचि कश्चन ॥११.९.२०॥

हे अर्बुदे ! आपके द्वारा युद्धभूमि से भागे हुए श्रेष्ठ शत्रुवीरों को इन्द्रदेव चुन-चुनकर हिंसित करें और इन शत्रुओं में से कोई भी सुरक्षित न रह सके ॥११.९.२०॥

उत्कसन्तु हृदयान्यूर्ध्वः प्राण उदीषतु ।
शौष्कास्यमनु वर्ततामित्रान् मोत मित्रिणः ॥११.९.२१॥

शत्रुओं के हृदय उखड़ जाएँ, शत्रुओं के प्राण ऊपर ही ऊपर शरीर का साथ छोड़ दें । भयवश उनके मुख सूख जाएँ और हमारे मित्रजनों को इस प्रकार के कष्ट न हों ॥११.९.२१॥

ये च धीरा ये चाधीराः पराञ्चो बधिराश्च ये ।
तमसा ये च तूपरा अथो बस्ताभिवासिनः ।
सर्वांस्तामर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥११.९.२२॥

जो धैर्यशाली वीर, अधीर, कायर, युद्ध से पलायन करने वाले भयवश शक्ति -विहीन,अन्धकार से घिरे हुए हैं। जो मोहवश, भग्नशृंग पशु के समान परेशान होकर खड़े रह जाते हैं और जो भेड़-बकरियों के समान शब्द करने वाले वीर हैं, हे अर्बुदे ! हमारे उन सभी सेनानियों को, शत्रुओं

को पराजित करने के लिए इन शत्रुओं के समक्ष करें ॥११.९.२२॥

अर्बुदिश्च त्रिषन्धिश्चामित्रान् नो वि विध्यताम् ।
यथैषामिन्द्र वृत्रहन् हनाम शचीपतेऽमित्राणां सहस्रशः ॥११.९.२३॥

अर्बुदि और त्रिषधि नामक ये दोनों देव हमारे वीरनायक हैं, ये शत्रुओं को अनेक विधियों से विनष्ट करें, है वृत्रनाशक शचीपति इन्द्रदेव ! जिन हजारों प्रकार की रीतियों से हम इन शत्रुओं का संहार कर सकें, उस प्रकारआप इन्हें प्रताड़ित करें ॥११.९.२३॥

वनस्पतीन् वानस्पत्यान् ओषधीरुत वीरुधः ।
गन्धर्वाप्सरसः सर्पान् देवान् पुण्यजनान् पितॄन् ।
सर्वांस्तामर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरूदारांश्च प्र दर्शय ॥११.९.२४॥

हे अर्बुदि देव ! वृक्ष और वनस्पतियों से निर्मित पदार्थों, ओषधियों, लताओं, गंधर्वो, अप्सराओं, सर्पो, देवों, पुण्यजनों, पितरगणों को आप शत्रुओं को प्रदर्शित करें और आकाशीय अस्त्रों (शक्तियों) को भी प्रदर्शित करें , जिससे शत्रुपक्ष भयभीत हो जाए ॥११.९.२४॥

ईशां वो मरुतो देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
ईशां व इन्द्रश्चाग्निश्च धाता मित्रः प्रजापतिः ।
ईशां व ऋषयश्चक्रुरमित्रेषु समीक्षयन् रदिते अर्बुदे तव ॥११.९.२५॥

हे अर्बुदे ! आपके आक्रमण किये जाने पर, शत्रुओं की पहचान होने के बाद हमारे शत्रुपक्ष को मरुद्गण दण्डित करें। इन्द्र, अग्नि आदि देवता शत्रुओं पर नियंत्रण करें । धाता, मित्र, प्रजापति, आदित्य, ब्रह्मणस्पति देव तथा अथर्वा, अङ्गिरा आदि ऋषिगण शत्रुओं को नियंत्रित करें ॥११.९.२५॥

तेषां सर्वेषामीशाना उत्तिष्ठत सं नह्यध्वम् ।
मित्रा देवजना यूयमिमं संग्रामं संजित्य यथालोकं वि तिष्ठध्वम् ॥११.९.२६॥

हे हमारे मित्ररूप देवगण ! आप हमारे शत्रुपक्ष का नियंत्रण करने के लिए उठकर तत्पर हों। इस प्रस्तुत युद्ध में भली प्रकार विजय प्राप्त करके अपने-अपने स्थान को प्रस्थान करें ॥११.९.२६॥

॥अथर्ववेद – एकादश काण्डम्॥

सूक्त १० – शत्रुनाशक सूक्त

अर्बदि सर्प की स्तुति, युद्ध के लिए तैयार होने की प्रेरणा , जातवेद अग्नि और आदित्य की स्तुति, श्वेत चरणों वाली गाय तथा ब्रह्मणस्पति देव से विजय प्रदान करने का अनुरोध

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्रान् अनु धावत ॥११.१०.१॥

हे उदार वीरो ! आप अपनी ध्वजा- पताकाओं के साथ युद्ध के लिए चल पड़े । हे सर्प के समान आकृति वाले देवगण ! आप राक्षसों और अन्य लोगों के साथ हमारे शत्रुओं पर आक्रमण करें ॥११.१०.१॥

ईशां वो वेद राज्यं त्रिषन्धे अरुणैः केतुभिः सह ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि पृथिव्यां ये च मानवाः ।
त्रिषन्धेस्ते चेतसि दुर्णामान उपासताम् ॥११.१०.२॥

हे शत्रुओ ! वज्रधारी देव तुम्हें वश में रखें । हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपनी अरुणवर्ण ध्वजा-पताकाओं के साथ उठें और

आकाश, अंतरिक्ष एवं पृथ्वी के बुरे काम (दुष्प्रतिष्ठा) वाले मनुष्यों पर दृष्टि रखें ॥११.१०.२॥

अयोमुखाः सूचीमुखा अथो विकङ्कतीमुखाः ।
क्रव्यादो वातरंहस आ सजन्त्वमित्रान् वज्रेण त्रिषन्धिना ॥११.१०.३॥

विषन्धि वज्र के साथ लोहे के मुख (फल) वाले, सुई की नोक के समान बहुत से काँटों वाले, वृक्षों के समान काँटेदार, कच्चे मांस का भक्षण करने वाले और वायु के वेग से गमन करने वाले (बाण) शत्रुओं पर टूट पड़े ॥११.१०.३॥

अन्तर्धेहि जातवेद आदित्य कुणपं बहु ।
त्रिषन्धेरियं सेना सुहितास्तु मे वशे ॥११.१०.४॥

हे जातवेदा, हे आदित्य ! आप शत्रु शवों को आत्मसात् कर लें । त्रिषधिदेव की वज्र को धारण करने वाली सेना भली प्रकार हमारे नियन्त्रण में रहे ॥११.१०.४॥

उत्तिष्ठ त्वं देवजनार्बुदे सेनया सह ।
अयं बलिर्व आहुतस्त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ॥११.१०.५॥

हे देवजनो, हे अर्बुदे ! आप अपनी सेना के साथ उठे। यह आहुति आपको तृप्ति प्रदान करने वाली हो। त्रिषन्धिदेव की सेना भी हमारी आहुति से परितृप्त होकर हमारे शत्रुओं को विनष्ट कर डाले ॥११.१०.५॥

शितिपदी सं द्यतु शरव्येयं चतुष्पदी ।
कृत्येऽमित्रेभ्यो भव त्रिषन्धेः सह सेनया ॥११.१०.६॥

यह शितिपाद चार चरण वाली शक्ति , बाणों की तरह शत्रुओं का संहार करे । हे विनाशकारिणी कृत्ये ! आप त्रिषन्धि नामक देव के वज्र को धारण करने वाली सेना के साथ शत्रुओं के विनाश के लिए उद्यत रहें ॥११.१०.६॥

धूमाक्षी सं पततु कृधुकर्णी च क्रोशतु ।
त्रिषन्धेः सेनया जिते अरुणाः सन्तु केतवः ॥११.१०.७॥

मायावी धूम्र से शत्रुसेना के नेत्र भर जाएँ और वह धराशायी होने लगे । नगाड़ों की ध्वनि से श्रवण शक्ति के नष्ट होने पर शत्रुसेना रोने लगे । त्रिषन्धिदेव की सेना की विजय होने पर लाल वर्ण के ध्वज फहराये जाएँ ॥११.१०.७॥

अवायन्तां पक्षिणो ये वयांस्यन्तरिक्षे दिवि ये चरन्ति ।

श्वापदो मक्षिकाः सं रभन्तामामादो गृध्राः कुणपे रदन्ताम् ॥११.१०.८॥

जो पक्षी दिव्यलोक और अन्तरिक्ष लोक में विचरण करने वाले हैं, शत्रुदल की मृत्यु पर मांस भक्षण के लिए नीचे मुख करके आ जाएँ। हिंसक पशु और मक्खियाँ शवभक्षण के लिए हमला करें । कच्चे मांस को खाने वाले गीध भी शवों का भक्षण करें ॥११.१०.८॥

यामिन्द्रेण संधां समधत्था ब्रह्मणा च बृहस्पते ।
तयाहमिन्द्रसंधया सर्वान् देवान् इह हुव इतो जयत मामुतः ॥११.१०.९॥

हे बृहस्पति देव ! आपने देवराज इन्द्र और प्रजापति ब्रह्मा से जो संधान क्रिया (प्रतिज्ञा की थीं; हे इन्द्रदेव ! उस प्रतिज्ञा स्वरूप संधान क्रिया से हम समस्त देवों को यहाँ आवाहित करते हैं। हे आवाहित देवो ! आप हमारे सैन्यदल को विजय श्री प्रदान करें, शत्रुसेना को नहीं ॥११.१०.९॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषयो ब्रह्मसंशिताः ।
असुरक्षयणं वधं त्रिषन्धिं दिव्याश्रयन् ॥११.१०.१०॥

अंगिरा के पुत्र देवमन्त्री बृहस्पति और अपने ज्ञान से प्रखर अन्य ऋषि भी असुरों के संहारक त्रिषन्धि नामक वज्र का दिव्यलोक में आश्रय लेते रहे हैं ॥११.१०.१०॥

येनासौ गुप्त आदित्य उभाविन्द्रश्च तिष्ठतः ।
त्रिषन्धिं देवा अभजन्तौजसे च बलाय च ॥११.१०.११॥

जिस त्रिषन्धि ने सूर्यदेव को संरक्षित किया। सूर्य और इन्द्र दोनों उससे रक्षित रहते हैं । त्रिषन्धि नामक वज्र को सभी देवों ने ओज और बल के लिए स्वीकृत किया है ॥११.१०.११॥

सर्वांल्लोकान्त्समजयन् देवा आहुत्यानया ।
बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ॥११.१०.१२॥

अंगिरा के पुत्र बृहस्पति ने जिस असुर-विनाशक वज्र को निर्मित किया, इन्द्र आदि सभी देवताओं ने उसी से सभी लोकों पर विजय प्राप्त की ॥११.१०.१२॥

बृहस्पतिराङ्गिरसो वज्रं यमसिञ्चतासुरक्षयणं वधम् ।
तेनाहममूं सेनां नि लिम्पामि बृहस्पतेऽमित्रान् हन्म्योजसा ॥११.१०.१३॥

हे बृहस्पतिदेव ! उसी वज्र के ओज से हम शत्रु सेना को शक्तिपूर्वक नष्ट करते हैं, जिसे आपने असुर संहार के लिए विनिर्मित किया था ॥११.१०.१३॥

सर्वे देवा अत्यायन्ति ये अश्नन्ति वषट्कृतम् ।
इमां जुषध्वमाहुतिमितो जयत मामुतः ॥११.१०.१४॥

जो वषट्कार से प्रदत्त हविष्यान्न का सेवन करते हैं, वे देवगण शत्रुओं को जीतकर हमारी ओर आगमन कर रहे हैं । हे देवगण ! आप इस आहुति को ग्रहण करें और यहाँ शत्रुओं को पराजित करें, उधर से नहीं ॥११.१०.१४॥

सर्वे देवा अत्यायन्तु त्रिषन्धेराहुतिः प्रिया ।
संधां महतीं रक्षत ययाग्रे असुरा जिताः ॥११.१०.१५॥

समस्त देवगण शत्रुसेना का अतिक्रमण करें । विषन्धि वज्र को हवि प्रिय है । हे देवगण ! जिससे आपने प्रारम्भ में आसुरी शक्तियों का पराभव किया, उसी से सन्धि की सुरक्षा करें ॥११.१०.१५॥

वायुरमित्राणामिष्वग्राण्याञ्चतु ।
इन्द्र एषां बाहून् प्रति भनक्तु मा शकन् प्रतिधामिषुम् ।

आदित्य एषामस्त्रं वि नाशयतु चन्द्रमा युतामगतस्य पन्थाम् ॥११.१०.१६॥

वायुदेव शत्रुओं के बाणों के अग्रिम भागों को शक्ति विहीन करें । इन्द्रदेव इनकी भुजाओं को खंडित कर दें। वे शत्रु प्रत्यञ्चा पर बाण चढ़ा पाने में सक्षम न हों । सूर्यदेव इनके आयुधों को विनष्ट करें। चन्द्रदेव शत्रु के मार्ग को अवरुद्ध करें ॥११.१०.१६॥

यदि प्रेयुर्देवपुरा ब्रह्म वर्माणि चक्रिरे ।
तनूपानं परिपाणं कृण्वाना यदुपोचिरे सर्वं तदरसं कृधि ॥११.१०.१७॥

हे देवताओ ! यदि शत्रुरूप राक्षसों ने पूर्व से ही मन्त्रमय कवचों का निर्माण किया हो, तो आप उन मन्त्रों को निरर्थक (शक्तिहीन) कर दें ॥११.१०.१७॥

क्रव्यादानुवर्तयन् मृत्युना च पुरोहितम् ।
त्रिषन्धे प्रेहि सेनया जयामित्रान् प्र पद्यस्व ॥११.१०.१८॥

हे त्रिषधिदेव ! आप शत्रु समूह को घेरकर मांसभक्षियों के सामने धकेल दें और अपनी सेना के साथ आगे बढ़े तथा

शत्रुओं को जीतकर, उन्हें अपने नियन्त्रण में करें ॥११.१०.१८॥

त्रिषन्धे तमसा त्वममित्रान् परि वारय ।
पृषदाज्यप्रणुत्तानां मामीषां मोचि कश्चन ॥११.१०.१९॥

हे त्रिषन्धिदेव ! आप अपने मायावी अन्धकार से शत्रुओं को घेरें, पृषदाज्य (महान् व्रत या सार तत्त्व) से प्रेरित होकर इन शत्रुओं में से कोई भी मुक्त न रह पाए ॥११.१०.१९॥

शितिपदी सं पतत्वमित्राणाममूः सिचः ।
मुह्यन्त्वद्यामूः सेना अमित्राणां न्यर्बुदे ॥११.१०.२०॥

श्वेत पादयुक्त शक्ति शत्रुओं की सेना के ऊपर गिर पड़े । हे अर्बुदे ! आज ये युद्धभूमि में दूर-दूर दिखाई देती हुई शत्रु सेनाएँ किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाएँ ॥११.१०.२०॥

मूढा अमित्रा न्यर्बुदे जह्येषां वरंवरम् ।
अनया जहि सेनया ॥११.१०.२१॥

हे अर्बुदे ! आप अपनी माया से शत्रुओं को व्यामोहित करें, इनके मुख्य सेनापतियों का पराभव करें । आपके अनुग्रह से हमारी सेना भी उन पर विजय प्राप्त करे ॥११.१०.२१॥

यश्च कवची यश्चाकवचोऽमित्रो यश्चाज्मनि ।
ज्यापाशैः कवचपाशैरज्मनाभिहतः शयाम् ॥११.१०.२२॥

शत्रु सैनिक कवच को धारण किये हुए, कवचरहित अथवा रथारूढ़ जिस भी स्थिति में युद्ध कर रहे हों, वे अपने ही कवच बाँधने के पाशों, प्रत्यञ्चा पाशों और रथ के आघातों से घायल होकर गत्यवरोध से चेष्टारहित होकर गिर पड़े ॥११.१०.२२॥

ये वर्मिणो येऽवर्माणो अमित्रा ये च वर्मिणः ।
सर्वांस्तामर्बुदे हतां छ्वानोऽदन्तु भूम्याम् ॥११.१०.२३॥

जो शत्रु कवचधारी, कवचविहीन और कवच के अतिरिक्त रक्षा साधनों को धारण करने वाले हैं । हे अर्बुदे! उनकी मृत देहों को पृथ्वी पर कुत्ते, गीदड़ आदि भक्षण कर जाएँ ॥११.१०.२३॥

ये रथिनो ये अरथा असादा ये च सादिनः ।
सर्वान् अदन्तु तान् हतान् गृध्राः श्येनाः पतत्रिणः ॥११.१०.२४॥

रथारूढ़, रथरहित, अश्वरहित और घुड़सवार जो भी शत्रु सैनिक हों, हे अर्बुदै ! मारे गये उन शत्रुओं को गोध, श्येन (बाज) आदि पक्षी खा डालें ॥११.१०.२४॥

सहस्रकुणपा शेतामामित्री सेना समरे वधानाम् ।
विविद्धा ककजाकृता ॥११.१०.२५॥

शत्रु सेनाएँ शस्त्रों से बिंधकर हजारों की संख्या में घायल होकर शव के रूप में गिर पड़े ॥११.१०.२५॥

मर्माविधं रोरुवतं सुपर्णैरदन्तु दुश्चितं मृदितं शयानम् ।
य इमां प्रतीचीमाहुतिममित्रो नो युयुत्सति ॥११.१०.२६॥

हमारे जो शत्रु उस पृषदाज्य आहुति को वापस करके हमसे युद्ध करने के इच्छुक हैं, उनके मर्मस्थल बाणों से छिन्न-भिन्न हों । मार्मिक वेदना से वे रुदन करने लगें । दुखों से पीड़ित होकर वे पृथ्वी पर गिरें और हिंसक पशु उन्हें खा जाएँ ॥११.१०.२६॥

यां देवा अनुतिष्ठन्ति यस्या नास्ति विराधनम् ।
तयेन्द्रो हन्तु वृत्रहा वज्रेण त्रिषन्धिना ॥११.१०.२७॥

देवगण जिस अनुष्ठान को सम्पन्न करते हैं और जो कभी निरर्थक नहीं होता, उस त्रिशंधि वज्रास्त्र से वृत्रसंहारक इन्द्र हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥११.१०.२७॥

॥इति एकादश काण्डम्॥